

मुद्रक और प्रकाशक  
जीवणजी डाह्याभाभी देसायी  
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदावाद - १४

सर्वाधिकार नवजीवन ट्रस्टके अधीन

पहली आवृत्ति ३०००, सन् १९५६  
पुनर्मुद्रण ७०००, सन् १९५८

मञ्जी, १९५८

## प्रस्तावना

‘शिक्षामें विवेक’ की तरह जिस पुस्तकमें भी ~~अधिकतर मेरे पुराने~~ लेखोंका ही संग्रह है। कॉलेजके दिनोंसे ही प्राथमिक शिक्षाके प्रश्नों मेरे हृदयमें स्थान बना लिया था। जब मैं बिटर या जूनियर बी० ए० में था, तब जिस विषय पर मैंने एक निबंध पढ़ा था; और जिसमें भी मुझे याद है कि मैंने औद्योगिक शिक्षा, हिन्दी, ग्रामजीवन-सुधार वगैराके बारेमें कुछ योजना पेश की थी। वह निबंध तो मेरी उस समयकी बुद्धिके अनुसार ही लिखा गया होगा। परन्तु शिक्षाके क्षेत्रमें जीवनका उपयोग करनेकी अभिलाषा उस समयसे ही मनमें पोषित होती रही थी।

सत्याग्रहाश्रमकी राष्ट्रीय शालामें शरीक हुआ, तब उस अभिलाषाको मूर्तरूप मिला। राष्ट्रीय शालासे गुजरात विद्यापीठमें काम करनेका अवसर आया, तब विद्यापीठकी पाठशालाओंके उस समयके निरीक्षक श्री कालिदास वसन्तजी दवेने ‘नवजीवन’ की पूर्तिके रूपमें ‘विद्यापीठ शिक्षा-अंक’ के नामसे मासिक जारी किया। उसमें मैं कभी-कभी अपने विचार पेश करने लगा। उसके बाद अथवा साथ साथ ‘नवजीवन’ तथा दूसरे भी कुछ पत्रोंमें या प्रसंगों पर मैं अपने ये विचार प्रकट करता रहा। उनमें से कुछका संग्रह ‘तालीमकी बुनियादे’\*में हुआ। वह संग्रह एक विशेष दृष्टिसे किया गया था। जिसलिजे उसमें मेरे सभी लेख नहीं लिये गये थे।

जिसके बाद कुछ वर्ष बीत गये। १९३० के बादके आन्दोलनके पश्चात् शिक्षाके क्षेत्रमें मेरा प्रत्यक्ष भाग लेना बंद हो गया। १९३४में तो मैं बर्बा आ गया। वधनि मुझे गांधी-सेवा-संघके क्षेत्रमें बकेल दिया। परन्तु किसी बीच गांधीजीकी ‘बुनियादी शिक्षा’ की विचारसरणी आरंभ हो गयी। उसकी पहली परिपद्धमें मैं अग्रस्थित तो नहीं रह सका, परन्तु जाकिरहुसेन कमेटीमें अपना नाम रखा हुआ मैंने देखा।

---

\* नवजीवन कार्यालय द्वारा प्रकाशित। कीमत २-०-०; डाकखर्च १-०-०।

अस प्रकार मेरे ललओ फलर शलशके वलषयका वलचार करनेके अवसर आवे; और कभी-कभी ललखने या बोलनेके प्रसंग भी अुपस्थलत हुअे। ये लेख अधिकतर 'हरलजनबन्धु', हलन्दी 'सर्वोदय' या गुजराती मासलक 'शलक्षण अने साहित्य' में और कभी-कभी दूसरे पत्रोंमें भी प्रकाशलत होते थे। १९४२ के आन्दोलनसे पहले 'रचनात्मक कार्यक्रम' पर अलन दोनों मासलकोंमें मैंने अेक लेखमाला आरंभ की थी। अुसमें शलशके वलषय पर प्रकरण ललखे जा रहे थे कल अलतनेमें आन्दोलन शुरू हो गया और जेल चला जाना पड़ा। जेलसे छूटनेके बाद लेखमाला जारी रखनेकी सूचनायें मललीं, मेरी अलच्छा भी थी, परन्तु अुस वलषयका ध्यान खंडलत हो गया और परलस्थलतल भी बदल गअी, असललअे वह काम रह गया सो रह ही गया।

अलन सब लेखोंका संग्रह अव्यवस्थलत रूपमें सुरक्षलत पड़ा था। यह संभव नहीं था कल मैं स्वयं अुन सबको व्यवस्थलत करके छांटूं और प्रकाशलत कइं। असललअे मैंने सारी सामग्री श्री रमणीकलालभाअी मोदीको सौंप दी। अुन्होंने परलश्रम अुठाकर अुस सबको व्यवस्थलत कलया। लेखोंको क्रमशः जमाया; अुनके भाग कलये। जो अव वेकार हो गये मालूम हुअे, अुन्हें मुअे बताकर रद्द कलया। सुवारने जैसे लगे अुन्हें गुअसे सुधरवा ललया; अवूरे लगे अुन्हें पूरा करवा ललया। और फलरसे व्यवस्थलत रूपमें जमाकर सारे लेख मेरे देखनेके ललअे भेज दलये।

अैसा प्रतीत हुआ कल अुनके 'शलशामें वलवेक' और 'शलशका वलकास' जैसे दो स्वतंत्र भाग हो सकते हैं। असललअे तदनुसार व्यवस्था कर दी। असल प्रकार श्री रमणीकलालभाअी मोदीके परलश्रमसे ही मेरे तमाम पुराने लेखोंका संशोधन और संपादन हो रहा है।

लेखोंकी जांच करते-करते ही मैंने देख ललया कल वर्धा-योजनाका बीज सावरमतीमें ही बोया जा चुका था। 'तालीमकी वुनलयादें' पुस्तककी प्रस्तावनामें भी असका अुल्लेख तो है ही। परन्तु जैसा कल श्री नर-हरलभाअी परीखने ललखा है, अुद्योग और 'साधरी' (पुस्तकीय) शलशके बीच तथा शलशके वलषयों और प्रत्यक्ष जीवनके बीचके मेलका वलचार पूरी तरह वलकसलत नहीं हुआ था, अच्छी तरह सूझा भी नहीं था।

वह धीरे-धीरे किस तरह सूझता गया और विकसित होता गया, यह अनायास जिस पुस्तकमें दिये गये लेखोंको द्वारा पढ़ने पर मेरे ध्यानमें आया। जिसलिजे जिस संग्रहको 'शिक्षाका विकास' नाम दिया गया है।

शिक्षाके कार्य और विचारोंके आदान-प्रदानमें श्री नरहरिभाभी परीक्षका और मेरा साथ सबसे अधिक रहा है। वैसे तो काकासाहब और विनोबा भी अतने ही पुराने साथी हैं। परन्तु कोचरख (अहमदाबाद) की राष्ट्रीय पाठशालामें शरीक हुआ, तबसे श्री नरहरिभाभीके और मेरे बीच जिस विषयमें जितनी चर्चाओं हुआं अतनी शायद औरोंके साथ नहीं हुआं। सावरमती आश्रममें चोरोके अपद्रवके कारण आश्रमवासियोंको कभी बार जोड़ी बनाकर पहरा देना पड़ता था। उसमें घंटे दो घंटेका समय हमारे हिस्सेमें आता था। भरसक हम दोनों एक ही जोड़ीमें रहनेकी व्यवस्था करते थे। हमारा रातका चारों ओर फैली हुआ शान्तिका यह समय शिक्षा और अर्थशास्त्रके विविध सिद्धान्तों और समस्याओं आदिका सह-चिन्तन करनेमें जाता था। मेरी और अनकी विचारसरणी क्वचित् ही भिन्न पड़ती होगी। सन् १९४७ में एक दो मास मैं उनके यहां सावरमतीमें रहा था। उस समय जिस संग्रहके कुछ लेखोंकी फाइल मैंने उन्हें पढ़नेको दी थी। उस समय वे गुजरात वेसिक अेज्युकेशन बोर्डके अध्यक्ष थे। उसी समय हमारे ध्यानमें आया कि यह संग्रह प्रकाशित हो तो 'नबी तालीम' के शिक्षकोंके लिजे उपयोगी होनेकी दृष्टिसे उसमें पूर्तिरूप कुछ लिखनेकी जरूरत होगी। मुझसे यह काम हो नहीं सकता था। अतः मैंने उस समय अनसे अनुरोध किया कि यह काम अुन्हींको करना पड़ेगा और अुन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार किया था। बादमें वे जितने बीमार हो गये कि यह अच्छा पूरी होनेकी आशा ही नहीं रही। परन्तु अीश्वरेच्छासे यह संग्रह छपनेमें विलंब हुआ। जिस बीच श्री नरहरिभाभीका स्वास्थ्य काम करने लायक सुवर गया और किया हुआ संकल्प पूरा हुआ।

जिस प्रकार जिस पुस्तकको श्री नरहरिभाभीकी पूर्ति प्राप्त हुआ। परन्तु उसे पूर्तिके रूपमें देनेकी अपेक्षा भूमिकाके रूपमें देना अधिक अपयुक्त होगा; वह पाठकोंको आगे आनेवाले लेखोंके लिजे तैयार करती है, जिसलिजे मैंने उसे भूमिकाके रूपमें छापनेका निश्चय किया है।

जिस भूमिकाका पहला प्रकरण 'नबी तालीम' के मुद्दों, अुसकी कठिनावियों और अुपायोंकी चर्चा करता है। अपने दूसरे प्रकरणके विषयमें थोड़ा स्पष्टीकरण अुन्होंने किया ही है। अुसमें दो वाक्य और जोड़ दूं। मैंने जाकिरहुसेन कमेटी द्वारा तैयार किये हुअे अितिहासके पाठ्यक्रमसे भिन्न प्रकारका अपनी दृष्टिका पाठ्यक्रम तैयार किया था। अुस पाठ्यक्रमकी कुछ नकलें करवा ली थीं। वह पाठ्यक्रम श्री नरहरिभावीका देखा हुआ था और सम्भवतः गुजरात वेसिक अेज्युकेशन बोर्डका पाठ्यक्रम तैयार करनेमें अुसका अुपयोग भी किया गया था। वह पाठ्यक्रम कुछ जल्दीमें तैयार किया गया था और अबूरा भी रहा होगा। परन्तु मुख्य बात कालक्रमकी थी। मेरा मानना है कि भूगोलकी तरह अितिहासका ज्ञान भी समीपसे शुरू करके पीछेकी तरफ जाना चाहिये। छोटे वच्चोंको प्राचीन मनुष्योंकी बातें कहनेसे अुनके मनमें गलत चित्र ही अुत्पन्न होते हैं और वे बड़ी अुम्रमें भी वैसे ही बने रहते हैं। जैसे पण्डितोंकी नजरके सामने भी वचपनमें पढ़े या सुने हुअे गिरधर कवि\* या शामल भट्टके\* हनुमान और रावणके चित्र ही तैरते रहते हैं, वैसे बालकोंके मनमें प्राचीन मनुष्योंके बारेमें विकृत चित्र ही खड़े होते हैं। और, चाहे दस लाख वर्ष कहिये या दस हजार वर्ष कहिये, दोनोंके बीचके भेदकी या अुनकी प्राचीनताकी कोबी स्पष्ट कल्पना तो अुन्हें हो ही नहीं सकती। जिस प्रकार यह व्यवस्थित ढंगसे गलत अितिहास सिखानेकी पद्धति बन जाती है। जिसलिअे अपने आसपासके और निकट समयके अितिहाससे शुरू करके धीरे-धीरे दूरके देश और दूरके समयकी तरफ जाना चाहिये। दुर्भाग्यसे मैं अपनी यह दृष्टि जाकिरहुसेन कमेटीके अधिकांश लोगोंको समझा नहीं सका। केवल विनोदाने मेरी यह दृष्टि मान्य की, परन्तु वे अुसकी आन्त्रिरी बैठकमें अुपस्थित नहीं थे और दूसरे सदस्योंने या तो अुसे स्वीकार नहीं किया या अुसका आग्रह नहीं रखा।

जिस पाठ्यक्रमकी नकलें व्यक्तिगत रूपमें किसी किसीने मुझसे मंगवाबी थीं। और मेरा खयाल था कि अुसकी अेकाव नकल मेरे पास जरूर

\* गुजराती भाषाके प्राचीन कवि, जिन्होंने रामायणको गुजरातीमें पद्यबद्ध किया है।

होगी। परन्तु मेरे संग्रहमें वह नहीं मिली। जिसलिखे मैंने श्री नरहरिभाभीको जिस विषयमें स्वतंत्र चर्चा करनेका सुझाव दिया। पाठक देखेंगे कि वह चर्चा अन्होंने सांगोपांग रूपमें भूमिकाके दूसरे प्रकरणमें की है। उसमें विनोबाके विचार भी गूँथ लिये गये हैं। अनायास उसमें अतिहास-सम्बन्धी मेरे तीनों मंतव्योंकी चर्चा भी आ जाती है। अेक, जैसा ऊपर कहा गया है, अतिहासकी शिक्षाका देश और कालकी दृष्टिसे आरंभस्थान; दूसरा, अतिहासके ज्ञानकी अुपयोगिताके बारेमें 'जड़मूलसे क्रान्ति' में प्रगट किये गये विचार; और तीसरा, 'तालीमकी वुनियादें' पुस्तकमें 'अतिहासकी शिक्षाके विषयमें दृष्टि' में बताया गया निम्न विचार :

"हमें भूतकालके अनुभवोंके — अतिहासके — व्योरोकी स्मृति नहीं है। परन्तु अुन अनुभवोंके द्वारा किये हुअे परिवर्तनोंको हमने जिस जीवनमें भी अनुभव किया है; और हमारी वर्तमान स्थिति अुन संस्कारोंका ही फल है। अतिहासका ज्ञान हमें भले न हो, परन्तु अतिहासका परिणाम क्या हुआ, यह हमसे अज्ञात नहीं है। वह हमारा आजका जीवन है।

"व्यक्ति और समाज दोनोंको यह तत्त्व लागू होता है।"

जिस प्रकार श्री नरहरिभाभीकी भूमिका ही जिस पुस्तकको नवीनता प्रदान करती है। उसे व्यवस्थित रूप श्री रमणीकलालभाभी मोदीके द्वारा प्राप्त हुआ है। फिर भी पुस्तकका कर्ता मैं माना जाऊंगा! कर्ता कैसे केवल निमित्त ही होता है, जिसका यह अुदाहरण है।

वर्षा, २-६-'५०

कि० घ० मशहबाला

१. नवजीवन द्वारा प्रकाशित। कीमत १-८-०; डाकखर्च ०-६-०।

२. यह लेख आज पढ़ने पर देखता हूं कि 'जड़मूलसे क्रान्ति' में जिस विषय पर प्रगट किये गये विचार जिस लेखमें अधिक विस्तारसे आये हैं। फिर भी खूबी यह है कि 'जड़मूलसे क्रान्ति' के उस प्रकरणकी खूब चर्चा हुअी और 'तालीमकी वुनियादें' वाले प्रकरण पर किसीने कोअी आलोचना नहीं की!

## अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

३

### भूमिका

नरहरि द्वा० परीक्ष

- |                                |    |
|--------------------------------|----|
| १. नयी तालीम और स्वावलंबन      | ११ |
| २. इतिहासकी शिक्षा — कुछ सुझाव | ३५ |

पहला भाग : सावरमती

- |                        |    |
|------------------------|----|
| १. शिक्षाके लक्षण      | ४७ |
| २. शिक्षित और अशिक्षित | ५० |
| ३. ज्ञान या अज्ञान ?   | ५५ |
| ४. परिचारक भील         | ६१ |
| ५. सम्यताके आधार-स्तंभ | ६३ |
| ६. धन्येका निश्चय      | ६६ |

दूसरा भाग : सेवाग्राम

- |                                  |     |
|----------------------------------|-----|
| १. शिक्षा और श्रम                | ७५  |
| २. वर्गा-पद्धति                  | ७९  |
| ३. दो संस्कृतियां                | ८६  |
| ४. गांधीजीके शिक्षा-संबंधी विचार | ९२  |
| ५. 'द्वारा', 'और', 'की' ?        | ९८  |
| ६. अद्योग द्वारा शिक्षा          | १०६ |
| ७. जीवन-निर्वाहकी शिक्षा         | ११० |
| ८. नयी तालीमका शिक्षक            | ११५ |
| ९. वर्गा-शिक्षाका एक नमूना       | १२० |
| १०. कमानेवाली शिक्षा             | १२१ |
| ११. 'नयी तालीम' का सन्देश        | १२५ |
| १२. इतिहासका ज्ञान               | १२८ |

# भूमिका

लेखक

नरहरि द्वा० परोख





## नयी तालीम और स्वावलंबन

श्री किशोरलालभाभीकी इस पुस्तकमें शिक्षा-संबंधी, विशेषतः 'नयी तालीम' अथवा नयी शिक्षा संबंधी लेखोंका संग्रह है। कुछ लेख तो 'नयी तालीम' के नामसे परिचित शिक्षाकी नयी तालीमका बीज क्रान्तिकारी प्रवृत्ति आरंभ हुई उससे पहलेके लिखे हुये हैं। परन्तु इन लेखोंकी विचारसरणी उसी दिशामें ले जानेवाली है। गांधीजीने हम सबके द्वारा सावरमतीमें शिक्षाका जो प्रयोग शुरू किया, उससे उनका सेवाग्रामका प्रयोग किस तरह फलित हुआ, जिसकी इन लेखोंसे कुछ झांकी मिलती है। जिसलिसे इस पुस्तकको अन्होंने 'शिक्षाका विकास' जो नाम दिया है वह सर्वथा अचित है। चूंकि ये लेख भिन्न भिन्न समय और भिन्न भिन्न अवसरों पर लिखे गये थे, जिसलिसे अेक निबंधमें विषय-प्रतिपादनकी जो अेकनृत्ता होती है वह इनमें नहीं आ सकी। परन्तु अेक या दूसरे स्थान पर सब मुद्दोंकी चर्चा थोड़ी-बहुत मात्रामें इसमें जरूर आ जाती है। श्री किशोरलालभाभीने मुझसे कहा कि 'नयी तालीम'—जो वर्धा शिक्षा योजनाके नामसे भी पहचानी जाती है—की चर्चा करनेवाला अेक पूरा लेख अथवा निबंध इस संग्रहकी पूर्तिरूपमें मैं लिखूं। अन्होंने जो कुछ कहा है उससे नया अथवा अधिक मझे कुछ कहना नहीं है। श्री किशोरलालभाभीमें मौलिक रीतिसे विचार करनेकी और विषयके मूल तक पहुंच कर उसका सूक्ष्म पृथक्करण और विशद विवेचन करनेकी जो शक्ति है, वह भी मुझमें नहीं है। फिर भी कुछ न कुछ लिखना मैंने स्वीकार किया। गांधीजीने अपनी शिक्षा-योजनामें स्वावलंबनको विशेष महत्त्वकी वस्तु मान कर उस पर जोर दिया है। परन्तु उस पर नफल रूपमें अमल हुआ कहीं दिखायी नहीं देता। जो स्वावलंबनके इस तत्त्वको मानने है,

वे भी अिनमें सफलता प्राप्त नहीं कर सके। बहुतेोंने तो स्वावलंबनके तत्त्वको छोड़ कर ही गांधीजीकी योजना स्वीकार की है। मैंने अिस लेखमें अिस बातकी चर्चा की है कि गांधीजी अिस योजना पर कैसे पहुंचे, स्वावलंबनको वे क्यों महत्त्वपूर्ण मानते हैं और अुसे सिद्ध करनेके लिये किस प्रकारके प्रयत्न होने चाहिये।

जब गांधीजीने नयी तालीमका विचार शिक्षाके क्षेत्रमें काम करनेवाले अपने साथियों और मित्रोंके सामने पहले-पहल सन् १९३७ में रखा, तब अुन्होंने कहा था कि मैं अिस देशके सबसे मूल्यवान भेंट सामने और अुसके द्वारा संसारके सामने कुछ नये विचार रखनेका दावा कर सकता हूं। मैंने अब तक जिन विचारोंकी भेंट जगतके चरणोंमें रखी है, अुनमें यह विचार मुझे सबसे अधिक क्रान्तिकारी और अिसलिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। अिससे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक मूल्यवान भेंट मैं दुनियाके सामने रख सकूंगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। अिसमें मेरे सारे रचनात्मक कार्यक्रमको व्यावहारिक रूप देनेकी कुंजी समाजी हुई है। जिस नयी दुनियाके लिये मैं छटपटा रहा हूं, वह अिसमें से अुत्पन्न की जा सकती है। यह मेरी आखिरी विरासत है। ये अधरशः गांधीजीके शब्द नहीं हैं। परन्तु अुस समय जो शब्द अुन्होंने कहे थे, अुनका भावार्थ अिनमें आ जाता है।\* अब हम यह देखें कि गांधीजीके शिक्षा-सम्बन्धी विचारोंमें ऐसी क्या नयी बात है कि सदा अत्यन्त संयमसे बोलनेवाले गांधीजी अिनके वारेमें ऐसा बड़ा दावा करते हैं।

जिसे शिक्षा अर्थात् पाठशालाकी शिक्षा कहा जाता है, अुसका लाभ अब तक दुनियाके आठ-दस प्रतिशतसे अधिक लोगोंको मुश्किलसे ही मिला होगा। जो आगे बढ़े अुसे देश कहे जाते हैं, वर्षा-योजनाके वहां शिक्षा-प्राप्त लोगोंका प्रतिशत अधिक होगा। मुख्य सिद्धान्त लेकिन पिछड़े अुसे माने जानेवाले देशोंमें, जिनकी

\* अिस लेखमें आगे भी जहां यह लिखा है कि गांधीजीने फलां बात कही, वहां अिसी प्रकार गांधीजीके अधरशः कहे अुसे शब्द नहीं, परन्तु अुनके कथनका भावार्थ ही है।

आवादी बहुत बड़ी है, तो शिक्षितोंका प्रतिशत आठ-दससे भी बहुत कम है। और आगे बढ़े हुए देशोंमें भी जिसे अच्छे शिक्षा कहा जाता है, उसका लाभ बहुत थोड़े प्रतिशतको मिल सकता है। अंग्लैण्ड और अमरीका जैसे देशोंमें भी अच्छे शिक्षा सबको सुलभ नहीं होती। अमीरोंके लड़के या अच्छे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये छात्रवृत्ति प्राप्त करनेमें सौभाग्यशाली सिद्ध होनेवाले थोड़ेसे गरीब विद्यार्थी ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। सौभाग्यशाली शब्द मैं इसलिये काममें ले रहा हूँ कि सभी गरीब विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियां नहीं मिलतीं। अमीरोंके लड़के तो योग्य हों या न हों, अच्छे शिक्षा प्राप्त करने जा सकते हैं। बड़े साहित्यकार बननेकी, कलाकार बननेकी, वैज्ञानिक बननेकी, सिन्पी बननेकी या इंजीनियर बननेकी योग्यता जिनमें बीज रूपसे होती है, जैसे कितने ही बालकोंकी शक्तियां अनुकूलताके अभावमें खिले बिना रह जाती होंगी। गांधीजीने दुनियाके सामने शिक्षाकी जो योजना रखी है, उसके अनुसार गरीबीके कारण किसी मनुष्यको अच्छेसे अच्छे शिक्षासे भी वंचित नहीं रहना पड़ेगा। सन् १९३७ में अन्होंने केवल सातसे चौदह वर्षके बच्चोंके लिये जिसे नयी तालीम या दुनियादी शिक्षा (वेसिक अज्युकेशन) कहा जाता है, उसीकी योजना पेश की थी। उसमें मुख्य वस्तु यह थी कि बालकोंकी शिक्षा उनके आसपासकी कुदरती और सामाजिक स्थितिके अनुकूल किसी उत्पादक अद्योग द्वारा होनी चाहिये। अद्योग ऐसा चुनना चाहिये, जिसमें बालकको शिक्षा देनेकी अधिकसे अधिक संभावना हो। उस अद्योगसे संबंध रखनेवाली तमाम छोटीसे छोटी बातें और क्रियाओं शास्त्रीय पद्धति और कुशलतासे सिखायी जायें और अद्योग भी ताब-धानी और कुशलतापूर्वक चलाया जाय, तो उसके द्वारा विद्यार्थीको ठोस शिक्षा दी जा सकती है। अतना ही नहीं, सातों कक्षाओंके विद्यार्थियोंके कुल उत्पादनकी रकम शिक्षकोंके वेतनके बराबर हो सकती है, वशतें कि विद्यार्थियोंका तैयार किया हुआ पक्का माल सरकार खरीद लेनेको तैयार हो। ऐसा करनेमें उनका हेतु शालाको खर्चके बारेमें स्वावलंबी बनानेका था। स्वावलंबनको अन्होंने अपनी योजनाकी खरी कसौटी (असिड टेस्ट) कहा है।

सन् १९४२ में अन्हें आगाखां महलमें नजरबन्द रखा गया। वहां अन्हें अपनी जिस योजना पर खूब गहरा चिन्तन करनेका समय मिला।

अन्हें लगा कि मैंने जो सातसे चौदह वर्षके बालकोंकी वर्धा-योजनासे पहले शिक्षाकी योजना दी है वह काफी नहीं है। मनुष्यकी और पीछेकी तालीम शिक्षा तो गर्भाधानसे आरंभ होती है और उसका

देहान्त होने तक जारी रहती है। जिसलिये आगाखां महलसे बाहर आनेके बाद अन्होंने सात वर्षसे कमके बालकोंके लिये पूर्व-बुनियादी शिक्षा, चौदह वर्षसे ऊपरकी भ्रुम्रबालोंके लिये उत्तर-बुनियादी शिक्षा और विद्यार्थी-अवस्थाकी भ्रुम्रको पार कर चुकनेवाले बड़ी भ्रुम्रके स्त्री-पुरुषोंके लिये प्रौढ़-शिक्षाकी योजनाएँ पेश कीं। और उनकी तफसील निश्चित करनेका काम अन्होंने जिस प्रकारकी शिक्षाको अमलमें लानेके लिये स्थापित हिन्दुस्तानी तालीमी संघको सौंपा। शिक्षाके बिन सब क्रमोंमें अलग-अलग ढंगसे स्वावलंबनके तत्त्व पर जोर दिया गया था। मुदाहरणार्थ, बुनियादी शिक्षाके सम्बन्धमें अन्होंने कहा कि विद्यार्थियोंका भ्रुत्पादन शिक्षकोंके वेतनके बराबर होना चाहिये, जब कि उत्तर-बुनियादी शिक्षामें जिस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थी अपने भोजन-वस्त्रके लायक भ्रुत्पन्न करके ही शिक्षा प्राप्त करें। जिस प्रकार विद्यार्थी चाहें जितने वर्ष पढ़ें, परन्तु उसके माता-पिता या समाज पर उसके निर्वाहका भार नहीं पड़ेगा। इसी तरह प्रौढ़-शिक्षाको भी प्रौढ़ अपनी आजीविकाके लिये जो धन्धा करता हो उसके आसपास जिस ढंगसे गूँथना चाहिये कि वह न केवल अपना जीवन अच्छी तरह बिताना सीखे, बल्कि जो धन्धा करता हो अमुमें भी उसकी कुशलता बढ़े और धन्धेमें भरसक मुबार करके वह अपना भ्रुत्पादन बढ़ा सके।

यह तो जिस शिक्षा-योजनाका आर्थिक पहलू हुआ। जिस योजनाका विशेष दावा तो यह है कि भ्रुत्पादक भ्रुद्योगके साथ ही

सारी शिक्षाको गूँथ देनेसे, भ्रुत्पादक भ्रुद्योगको सर्वांगीण विकास शिक्षाका माध्यम बनानेसे, बालकका सर्वांगीण विकास किया जा सकेगा और बालक समाजका अधिक भ्रुपयोगी अंग बन सकेगा। जिस समय अधिकतर कितानी

शिक्षा दी जाती है। जिनमें लिखने-पढ़नेका काम मुख्य हो जैसे मुंशीगिरी या कारकुनीके कामके नये धंधे जिस जमानेमें बहुत चल गये हैं। उनमें आजकलके पढ़े-लिखे लोग काम देते हैं। हमारे देशमें तो धंधेकी शिक्षा देनेवाली शालाओं और विद्यालयोंमें पढ़े हुये विद्यार्थी भी वह धंधा स्वतंत्र रूपसे नहीं करते अथवा नहीं कर सकते। उनमें से अधिकांश उस धंधेसे सम्बन्धित कारकुनीका काम करते हैं। व्यापारिक कॉलेजोंसे हर साल सैकड़ों ग्रेज्युएट निकलते होंगे। उनमें से बड़े तो क्या परन्तु छोटे व्यापारी भी बहुत कम लोग होते हैं। अधिकांश व्यापारिक ग्रेज्युएट व्यापारिक पेढ़ियों या कंपनियोंमें कारकुनीका काम ही करते पाये जाते हैं। यही हाल विज्ञान और खेतीके ग्रेज्युएटोंका है। वे अपने-अपने धंधोंका पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करते हैं, परन्तु उन धंधोंको चलानेके लिये आवश्यक प्रत्यक्ष और व्यावहारिक कामोंमें वे कच्चे साबित होते हैं। जिसलिये उनके जीवन उन धंधोंके सम्बन्धमें भी परोपजीवी रहते हैं। उनके जीवनका भार उन धंधोंके मेहनत-मजदूरी करनेवाले वर्ग पर पड़ता है। मुन्हें जितना वेतन मिलता है, उसकी तुलनामें उन धंधोंके सामूहिक उत्पादनमें उनका बहुत थोड़ा हाथ होता है। गांधीजीकी यह योजना ऐसी है जिसमें मनुष्यकी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंका समान विकास होनेके साथ उसकी बुद्धि और सूझबूझका भी विकास होता है। वह जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, वह निश्चित होता है और उसे व्यवहारमें लानेकी कुशलता उसमें होती है।

शिक्षाकी जिस योजनामें शरीर-श्रम, स्वास्थ्य, दूसरोंके साथ मिलजुल कर काम करनेकी वृत्ति, व्यवस्था-शक्ति आदि गुणोंका बालकमें छुटपनसे ही विकास होता है। किसी भी प्रकारका श्रमकी महिमा अपयोगी काम करनेमें उसे अरुचि नहीं होती, धृणा नहीं आती या हीनता अनुभव नहीं होती। आजकल समाजमें पाये जानेवाले अँच-नीचके भेदभावमें तथा दूसरोंकी मेहनतसे लाभ भुठानेकी वृत्तिमें मूल कारण शरीर-श्रमकी अरुचि ही है। जिस योजनामें बालककी शरीर-श्रम करने तथा सबको समान माननेकी स्वाभाविक वृत्तियोंको अचित्त पोषण दिया जाता है।

आजकल दुनियाँ में जिस प्रकारकी शिक्षा प्रचलित है, वह व्यवहारम और परिणाममें आर्थिक और समाजिक असमानता उत्पन्न करनेवाली, मेहनत-मजदूरी करनेवाले वर्गका शोषण करनेवाली और जिसलिखे रक्तपात और युद्धोंको पोषण देनेवाली साबित हुयी है। जब कि दुनियादी शिक्षा अिन चीजोंकी जड़ पर आघात करनेवाली है, अहिंसक समाज-रचनाको नजदीक लानेवाली है।

## २

सन् १९३७ में जब देशके अधिकतर प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडल बने, तब गांधीजीने अन्हें आग्रहपूर्वक कहना शुरू किया कि शरावबन्दीके कार्यक्रम पर हमें कितना ही अधिक नुकसान भुठाने संक्षिप्त इतिहास भी अमल करना चाहिये। मंत्रीगण जिस विचारके अनुकूल ही थे। अुनके सामने मुख्य कठिनायी पैसेकी थी। शरावकी आय छोड़ दी जाय तो सरकारके मौजूदा खर्चको पूरा करनेके लिखे दूसरे कर लगाना चाहिये अथवा सरकारको मौजूदा खर्चमें कमी करनी चाहिये। गांधीजीने सोचा कि शिक्षाका सारा स्वरूप ही बदल दिया जाय तो शिक्षामें भी महत्त्वपूर्ण सुधार किये जा सकते हैं और अुसका खर्च भी घटाया जा सकता है। जिस प्रकार शरावबन्दी जिस योजनाका निमित्त बनी, परन्तु गांधीजीके दिमागमें तो और कयी कारणोंसे यह योजना पक रही थी। गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें थे तब अुन्होंने देखा था कि भारतीय बालकोंको वहाँकी सार्वजनिक शालाओंमें भरती नहीं किया जाता। वे शालाओं खासकर यूरोपीयोंके लिखे ही चलायी जाती थीं। गांधीजीके बच्चोंको अपवादके रूपमें अैसी किसी भी शालामें प्रवेश मिल सकता था। परन्तु समाजके दूसरे बालकोंको जो लाभ नहीं मिलता था, अुसे अपने बच्चोंके लिखे लेना गांधीजीको ठीक नहीं लगा। जिसलिखे अुन्होंने घर पर और अधिकतर स्वयं ही बच्चोंको पढ़ाना शुरू किया। बादमें अुन्होंने फिनिक्स आश्रम स्थापित किया और वहाँ सादा और शरीर-अश्रमवाला जीवन व्यतीत करने लगे। फिनिक्स आश्रममें अुनके बच्चोंके अलावा साथियोंके बच्चे भी थे। अुन सबकी शिक्षाका कोअी निश्चित प्रबंध

करनेकी जरूरत पैदा हुयी। जिस नये जीवनके अनुरूप शिक्षा देनी हो तो उसमें शरीर-श्रम और बुद्योगका स्थान होना चाहिये, यह सिद्धान्त तय हुआ और साक्षरी विषयों\* के अलावा बुद्योग सिखाना आरंभ किया गया। परन्तु सत्याग्रहकी लड़ावियां और दूसरे कभी विक्षेप वहां आये, जिसलिये गांधीजी शिक्षाके प्रश्नमें अधिक बारीकीसे नहीं अतुर सके। हिन्दुस्तानमें आनेके बाद सावरमती आश्रममें गांधीजीने अपने शिक्षाके प्रयोग अधिक व्यवस्थित रूपमें और बड़े पैमाने पर आरंभ किये। उनमें हम सब शरीक हुये। गांधीजी स्वयं भी उनमें अच्छी तरह भाग लेनेकी बिच्छा रखते थे। परन्तु उन पर अेकके बाद अेक अैसे काम आते गये कि प्रत्यक्ष शिक्षणका काम वे कर ही न सके। अुन्होंने जितनी आशा रखी थी अुतना समय वे हमें भी नहीं दे सके। प्रवाससे आश्रममें आते तब हमारे और विद्यार्थियोंके साथ चर्चा करते थे। क्या चल रहा है, यह जान लेते थे और कोअी सूचनाअें देने लायक होतीं तो दे देते थे। परन्तु बुद्योगकी कक्षाअें अलग और साक्षरी विषयोंकी कक्षाअें अलग, अिन दोनोंके बीच कोअी मेल या संबंध नहीं — शिक्षाका यही प्रकार चल रहा था। बुद्योग-शिक्षणका काम आश्रमके कुछ भाअी श्री मगनलाल-भाअी गांधीकी देखरेखमें करते थे। साक्षरी विषयोंकी कक्षाअें हम शिक्षक कहलानेवाले लोग चलाते थे। परन्तु बुद्योगके साथ साक्षरी विषयोंका अनुबंध करनेकी बात हममें से किसीको नहीं सूझी थी। शालाको शुरू हुअे अेक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था कि गांधीजीकी लगा कि शालाके शिक्षकोंको जब तक बुद्योग नहीं आता, तब तक वे राष्ट्रीय शिक्षक नहीं कहला सकते। जिसलिये अुन्होंने तय किया कि हम नये विद्यार्थी न लें और कम-से-कम

\* 'अेकेडेमिक सर्वेक्ट्स' के लिये 'साक्षरी विषय' शब्द मैंने बनाया है। आजकल अुनके लिये 'बौद्धिक विषय' शब्द काममें लिया जाता है। परन्तु वह ठीक नहीं है। उसमें यह गलत मान्यता है कि किताबी ज्ञानवाले विषय ही बौद्धिक होते हैं और बुद्योगका तथा जीवनके लिये अुपयोगी अन्य प्रवृत्तियोंका बुद्धिके साथ कोअी संबंध नहीं होता ! वस्तुतः बुद्योगमें और दूसरी प्रवृत्तियोंमें बुद्धिका ज्यादा विकास होता है। किताबी विषयोंमें तो रटाअीकी तरफ चले जानेका अय रहता है।



चार घंटे बुद्योग सीखनेमें दें। जिस प्रकार शालाका काम रोक कर हमने बुद्योग सीखना शुरू किया, तब भी यह स्पष्टता नहीं हुई थी कि बुद्योग-शिक्षक भी हमें को बनना है और साधरी विषयों तथा बुद्योगके बीच कोयी संबंध जोड़ना है। हममें से तो किसीको यह विचार ही नहीं सूझा था। गांधीजीके मनमें भी यह विचार बहुत अस्पष्ट दशामें रहा होगा। हां, हमारे बीच यह बात बहुत बार होती थी कि हम बुद्योग जिसलिअे अनिवार्य रूपमें सिखाते हैं कि आज जो शिक्षित माने जाते हैं अन्हें कारीगरीका कोयी काम करना नहीं आता और जो कारीगर हैं अन्हें साधरी शिक्षाके संस्कार नहीं होते। राष्ट्रीय शिक्षामें साधरी विषयोंके साथ बुद्योगकी शिक्षाको रखनेसे दोनों वर्गोंमें जो न्यूनता है वह पूरी हो जायगी। परंतु हमें यह कल्पना नहीं थी कि हमारे विद्यार्थियोंमें से कोयी बुद्योग सीखकर किसान या जुलाहा बन जायगा। अूस समयके विद्यार्थियों या शिक्षकोंमें से कोयी किसान या जुलाहा बना भी नहीं था। आज विचार करने पर असा लगता है कि हम शिक्षक और विद्यार्थी बुद्योग क्या सीखते थे अेक खेल ही करते थे। हम शिक्षक तर्कसे अपने मनको मना लेते थे कि यह अुपयोगी काम है, जिससे हमारा जीवन-निर्माण होता है और कारीगर तथा मजदूर-वर्गके साथ हमारा संबंध बंधता है। परंतु अधिकांश विद्यार्थियोंका तो यह निश्चित मत था कि अुनके समयका बिगाड़ ही हो रहा है; शिक्षक तो साधरी विषयोंमें निपुणता प्राप्त कर चुके हैं, परंतु हमारा समय बुद्योगोंमें चला जाता है, जिसलिअे साधरी विषयोंमें हम प्रगति नहीं कर सकते। अन्तमें अुन्होंने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया और हमें छोड़कर विश्वविद्यालयकी शिक्षा लेने चले गये। ये विद्यार्थी गांधीजीके अति निकट संबंधमें रहे अुये थे। अुन्होंने विशेष रूपसे गांधीजीका प्रेम संपादन किया था। अुनके विषयमें गांधीजीने बड़ी बड़ी आशाएं बांधी थीं। अिन विद्यार्थियोंने विश्वविद्यालयकी शिक्षा लेनेके लिअे आग्रह छोड़नेकी अनुमति मांगी, तब गांधीजीने कुरीसे अनुमति तो दे दी, परंतु अुनके हृदयको सस्त चोट भी लगी। अुन्हें प्रतीति हो गयी कि अुनके प्रयोगमें कोयी न कोयी बड़ी त्रुटि है और अुस त्रुटिकी वे खोज करने लगे। अुन्हें असा दिखायी देने लगा कि विद्यार्थियोंकी बुद्योगमें दिल-

वस्ती न होनेका कारण यह था कि बुद्योग ज्ञानपूर्वक नहीं सिखाया जाता था। बुद्योगका दूसरी शिक्षाके साथ या विद्यार्थियोंके जीवनके साथ कोई संबंध नहीं जोड़ा जा सका था। जीवन-विकासके एक मुख्य साधनके रूपमें हमने बुद्योगका अपुयोग नहीं किया था। हम शिक्षकोंको ऐसा करना आया ही नहीं था। और जिसलिये बुद्योगको प्रामाणिक जीवनका आधार मानने और उसमें एक प्रकारकी जीवनकी सार्थकता अथवा धन्यता अनुभव करनेकी बात विद्यार्थी समझ ही नहीं सके थे। विचारोंका यह मंथन गांधीजीके हृदयमें चल ही रहा था कि अितनेमें जिस प्रश्न पर अुन्हें विचार करना पड़ा कि शरावबन्दी करनी हो तो पैसेकी कठिनायी कैसे दूर की जाय। उसमें से अुन्हें शिक्षाकी यह नयी योजना सूझी। अुन्होंने तत्कालीन प्रान्तीय सरकारोंके सामने यह बात रखी कि विद्यार्थियोंके आसपासकी परिस्थितिके अनुकूल अुत्पादक बुद्योग द्वारा अुनकी सारी शिक्षा हो, तो शिक्षा अधिक ठोस हो सकती है और विद्यार्थियोंके अुत्पादनसे शालाको स्वावलंबी भी बनाया जा सकता है। प्रश्न तो अितना ही था कि शरावबन्दीके कारण जो आय छोड़नी पड़ रही है, उसे किस तरह पूरा किया जाय। परंतु गांधीजीने केवल अितना ही विचार नहीं किया। अुनकी विचार करनेकी पद्धति किसी भी प्रश्नको समग्र दृष्टिसे जांचनेकी थी। जिसलिये वे जिस विचारमें पड़ गये कि सारे देशके सातसे चौदह वर्षके बालकोंके लिये अुचित शिक्षा कैसी हो और वह सबके लिये कैसे सुलभ बनायी जाय? जिस अुम्रके सारे बालकोंको शिक्षा देनी हो तो सरकारको कितनी ही नयी शालाओं खोलनी पड़ेंगी। जितनी शालाओं आज हैं अुन्हींको चलानेके लिये जब सरकारको पैसेकी कठिनायी होती है, तब नयी शालाओं कैसे खोली जा सकती हैं? 'शालाओं चलानेमें मुख्य खर्च शिक्षकोंके वेतनका होता है। उसे मिटानेके लिये अुन्होंने कहा कि सातों कक्षाओंके विद्यार्थियोंके बुद्योगके कुल अुत्पादनसे शालाके तमाम शिक्षकोंके वेतनके जितनी आय होनी चाहिये।

जिसके विरुद्ध मित्रोंने यह आपत्ति अुठायी कि अगर आप स्वावलंबनका आग्रह रखेंगे, तो शिक्षक बालकोंने अुनके वृत्तेके बाहर और अुनकी मरजीके खिलाफ भ्रम करावेंगे। जिससे तो बालकोंके वचर्चोंका शोषण? शोषणका बड़ा प्रश्न खड़ा हो जायगा।

असके अन्तरमें गांधीजीने बताया कि स्वावलंबनको आवश्यक माननेमें मेरी दृष्टि शुद्ध शिक्षाकी ही है। अद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धतिको आप शिक्षाकी उत्तम पद्धतिके रूपमें स्वीकार करने हों, तो वह तभी उत्तम हो सकती है और उसके द्वारा बालकोंको ठोस शिक्षा तभी मिल सकती है, जब बालक सच्चा अद्योग करें, अद्योगके साथ खिलवाड़ न करें, अद्योगमें अपना समय न बिगाड़ें और अद्योगमें जो कच्चा माल और औजार काममें लिये जाते हों उनका पूरी सावधानीसे उपयोग करना जानें। समय, माल या औजारोंका बिगाड़ होता हो तब तो यह माना जायगा कि हम बच्चोंको गलत शिक्षा देते हैं, हम उनका नुकसान करते हैं। हमारा दावा तो यह है कि अद्योग द्वारा शिक्षा देनेसे बालककी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके सच्चे विकासके साथ उसकी बुद्धि और हृदयका विकास भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। यह दावा तभी सच्चा साबित होगा जब बालकको अपने शरीर और मन दोनोंकी सारी शक्ति लगाकर काम करनेकी आदत पड़े, अपने काममें आनेवाले औजारोंको अच्छी तरह रखना आवे और वह किसी तरहका बिगाड़ न करनेकी बात सीखे। स्वामाविक रूपमें जिस बालकका पालन-पोषण हुआ हो, उसे खुद काम करना पसन्द होता ही है। दूसरेसे सुनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी अपेक्षा स्वयं निरीक्षण करके और स्वयं प्रयोग करके ज्ञान प्राप्त करना उसे अधिक रुचिकर लगता है। शिक्षक स्वयं अद्योगमें कुशल होगा, अद्योगकी सारी क्रियाएँ कारण देकर समझाना उसे आता होगा और अद्योगमें बालककी दिलचस्पी पैदा करनेकी कला उसमें होगी, तो बालक बड़े शौकसे अद्योग करेगा। यह तो हम अनुभवसे प्रत्यक्ष देख सकेंगे कि असीसे बालकको अधिक अच्छी शिक्षा मिलती है। जिसमें बालकसे जबरन मेहनत करानेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। बालककी शक्तिके अनुसार उत्पादन न हो, तब तो थुलटा ही परिणाम आयेगा। बालकको संतोष नहीं होगा और उसमें निराशाकी भावना पैदा होगी।

यह माननेकी जल्दरत नहीं कि बिन दलीलोंसे सभी मित्रोंको संतोष हुआ होगा, क्योंकि आज भी उनमें से कुछ स्वावलंबनके बारेमें उत्साह नहीं रखते। हाँ, जितना विश्वास उन्हें अवश्य हो गया

है कि शिक्षाकी दृष्टिसे बुद्योग चलाना हो तो उसमें जरूर भी बिगाड़ नहीं होना चाहिये। वैसे, अभी तक तो बहुतसे शिक्षक यही मानते थे कि शालामें शिक्षाकी दृष्टिसे बुद्योग चलाना हो तो बिगाड़ होता ही है। शाला कोभी कारखाना नहीं है कि वहां उत्पादन और आयका हिसाब लगाया जाय।

दूसरी बात शिक्षाशास्त्री मित्रोंने गांधीजीको यह कही कि बुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी आप जो बात करते हैं वह कोभी नयी नहीं है।

शिक्षाके क्षेत्रमें नयेसे नया विचार यह है कि बालकको 'प्रोजेक्ट मेथड' केवल पुस्तकों द्वारा अथवा श्रवण, वाचन तथा लेखन से भेद द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धति बड़ी दोषपूर्ण है। हेतुपूर्वक नियोजित किसी प्रवृत्ति द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धति ही उत्तम है। यह कहकर उन्होंने 'प्रोजेक्ट मेथड'\* की, जो नयीसे नयी शिक्षा-पद्धति मानी जाती है, बात की और यह बताया कि आपकी

---

\* किसी वस्तुकी जानकारी देनी हो तो मुंहसे उसका वर्णन करनेके बजाय उससे संबंध रखनेवाली सारी क्रियाओं और सारा व्यवहार बालकोसे योजनापूर्वक कराकर उस वस्तुका ज्ञान देनेकी पद्धति। अदाहरणार्थ, हमें अपने लिखे हुये पत्रादि जिन्हें भेजने हों उन लोगों तक डाक-विभाग पत्रादि किस प्रकार पहुंचाता है, इसका वर्णन करनेके बजाय डाक-विभागके सारे व्यवहारकी व्यवस्था शालामें कृत्रिम ढंगसे करके उसके सारे काम बालकोसे कराये जायें। कोभी बालक पोस्ट मास्टर बने, कोभी डाकिया बने और कोभी पत्रोंको गांववार छांटनेवाला 'सॉर्टर' बने। शालामें कुछ डाकघर बनाये जायें। बालक एक-दूसरेको पत्र लिखकर जो डाकघर अपने गांवका माना जाता हो उसके डिब्बेमें डाल आयें। डाकिया बना हुआ लड़का उसमें से पत्र निकालकर उस पर मुहर लगावे और दूसरे गांव पहुंचानेके लिये नजदीकके स्टेशन पर दे आये। वहांसे वे कृत्रिम ढंगसे बनायी हुयी रेलगाड़ीके डाकके डिब्बेमें जायें। वहां सॉर्टर उन्हें गांववार छांटे और प्रत्येक गांवके पत्रोंके थैले उन गांवोंके नजदीकके स्टेशन आने पर वहां दे दे, अित्यादि।

शिक्षा-योजना वैसी ही है। गांधीजीने कहा कि 'प्रोजेक्ट मेयड' क्या है, सो मैं नहीं जानता। मैंने अपने विचार इस विषयकी कोअी पुस्तकें पढ़कर नहीं लिये हैं। यह योजना स्वतंत्र रूपमें विचार करके निकाली हुअी है। परंतु आप इस पद्धतिका जैसा वर्णन कर रहे हैं उस परसे मुझे लगता है कि मेरी योजना उससे विलकुल भिन्न है। इस पद्धतिमें तो जिस विषय या वस्तुकी शिक्षा देनी है उससे संबंधित उसकी योजना अथवा प्रवृत्ति कृत्रिम रूपमें पैदा की जाती है। वह ऐसी सच्ची प्रवृत्ति या सच्ची वस्तु नहीं होती, जो मनुष्यके उपयोगमें आये। उस पर किया गया खर्च और वालकों द्वारा किया गया श्रम समाजमें किसीके काममें नहीं आता। यह हो सकता है कि इस पद्धतिसे वस्तु अथवा विषयका ज्ञान वालकको अच्छी तरह कराया जा सके। परंतु इस पद्धतिमें शिक्षा अितनी खर्चौली बन जायेगी कि उसका लाभ थोड़ेसे धनिक वर्गके वालक ही भुठा सकेंगे। मुझे तो उत्तम शिक्षाको गरीबसे गरीब वर्गके वालकोंके लिये भी सुलभ बना देना है। इसीलिये स्वावलंबनको मैं अपनी योजनाकी सच्ची कसौटी कहता हूं। जिन बुद्योगों द्वारा शिक्षा देनेके लिये मैं कहता हूं, वे केवल वालकोंके मनोरंजन, खेल, या शिक्षाके लिये नियोजित कृत्रिम बुद्योग अथवा प्रवृत्तियां नहीं हैं, परंतु देशके लाखों अथवा करोड़ों लोगोंके जीवन-निर्वाहके साधन बन सकनेवाले सच्चे बुद्योग हैं।

इस प्रकार गांधीजीने अपनी योजना मिश्रों तथा शिक्षा-विभागके मंत्रियों और अधिकारियोंके सामने रखी। फिर उसे व्यवस्थित रूप देने तथा उसका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिये अेक कमेटी नियुक्त की गयी। कमेटीने सुझाया कि उत्पादक बुद्योगके अलावा जिस कुदरत और समाजके बीच वालक रहता है, उसे भी शिक्षाका माध्यम अथवा केन्द्र बनाया जाय। बुद्योगका चुनाव करनेमें आसपासकी कुदरत और समाजकी परिस्थितिका विचार तो करना ही पड़ेगा, इसलिये उनका परिचय भी आवश्यक है। उत्पादक बुद्योग शिक्षाका मुख्य माध्यम हो और आसपासकी कुदरत और समाज उप-माध्यम बनें। स्वावलंबनके संबंधमें कमेटीने यह आशा व्यक्त की कि शिक्षकोंके वेतनके लायक खर्च वालकोंके बुद्योगसे धीरे धीरे निकल सकेगा।

हमारे अलग अलग प्रान्तों, जिन्हें अब राज्य कहा जाता है, की सरकारोंने गांधीजीकी योजनाके अनुसार प्रयोग शुरू किये। थोड़े ही समयमें अनुकी समझमें आ गया होगा अथवा पहलेसे स्वावलंबनका यह समझ कर ही अनुोंने प्रयोग शुरू किये होंगे कि हम स्वावलंबनके ध्येय तक नहीं पहुंच सकेंगे। अनुको शायद यह भी लगा होगा कि शुद्ध शिक्षाकी

दृष्टिसे विचार किया जाय, तो गांधीजी स्वावलंबनको जो महत्त्व देते हैं वह देनेकी जरूरत नहीं। गांधीजीकी योजनामें अच्छी शिक्षाके जो दूसरे तत्त्व हैं, जैसे साक्षरी विषयोंका बालकोंकी अलग अलग प्रवृत्तियोंके साथ अनुबंध करना वगैरा, वे अनुोंने स्वीकार किये और अनु पर अमल करनेका प्रयत्न किया। व्यक्तिगत और सामूहिक सफाई संबंधी प्रवृत्तियां की जायं; राष्ट्रीय, धार्मिक और अंतुओंके उत्सव मनाये जायं; जिन घटनाओंसे मनोरंजनके साथ शिक्षा मिलनेकी संभावना हो अनुहें बालकोंके नाट्यप्रयोगोंमें बताया जाय; छोटे छोटे पर्यटनोंकी व्यवस्था की जाय; शाला-संबंधी तमाम कामकाजकी व्यवस्था बालकोंको सौंप कर अनुहें स्वराज्यकी तालीम दी जाय; बच्चोंसे हस्तलिखित पत्र निकलवाये जायं—अस प्रकारकी प्रवृत्तियोंको अनुोंने बालकोंकी शिक्षाके महत्त्वपूर्ण अंग मानना स्वीकार किया। इसके साथ साथ थोड़ा समय बालक उत्पादक बुद्योगमें दें, जिसे भी अनुोंने आवश्यक समझा। और बुद्योग तथा अन्य प्रवृत्तियोंका अनुबंध करके साक्षरी विषय सिखाना शुरू किया। परंतु बुद्योग द्वारा बालाको स्वावलंबी बनानेका विचार अनुहें असंभव जान पड़ा। परिणाम यह हुआ कि बुद्योग और दूसरी प्रवृत्तियां जारी करनेके कारण अिन नयी शालाओंका खर्च कम होनेके वजाय पुरानी पद्धतिकी पाठशालाओंसे जुलटा बढ़ गया। बुद्योग कुशलतापूर्वक न चला सकनेके कारण अुसमें जो बिगाड़ होता है वह अभी तक रोका नहीं जा सका है। अैसी आलोचनाओं भी होने लगी हैं कि यह तो जनताके धनका अपव्यय हो रहा है और बालकोंकी साक्षरी शिक्षाका स्तर गिरता जा रहा है। अैसी आलोचनाओंके अुत्तरमें बम्बई सरकारने

हालमें एक वक्तव्य प्रकाशित किया है। उसमें शिक्षाकी दृष्टिसे जिस प्रयोगके क्या क्या अच्छे परिणाम हुये हैं, यह बताकर कहा गया है कि अब तकके अनुभवसे ऐसा लगता है कि बुद्योगके मिलसिलेमें जो अति-रिक्त चालू खर्च होता है अतना तो बुद्योगसे निकालना संभव है। कुछ शालाओंमें बालकोंके वस्त्र-स्वावलंबी मंडल बने हैं, यह हकीकत भी उसमें बतायी गयी है।

बुद्योग अच्छी तरह चला सकनेके लिये तमाम शिक्षकोंकी अनुकी दूसरी तालीमके साथ बुद्योगका विषय सिखानेकी सरकारने योजना बनायी है। और जैसे जैसे शिक्षक तैयार होते साक्षरी विषयोंके जायंगे, वैसे वैसे तमाम प्रारंभिक शालाओंमें बुद्योग चारों ओर असंतोष और अनुवृद्ध शिक्षा जारी कर दी जायगी। परंतु जिस नीति पर अमल करनेके साथ शिक्षा-विभागके अधिकारियोंके मनमें यह चिन्ता बनी ही रही है कि साक्षरी विषयोंके ज्ञानका स्तर जरा भी गिरना न चाहिये। नयी पद्धतिमें साक्षरी विषयोंके पुराने ढंगके ज्ञानकी अपेक्षा रखी जाय, तो उसे पहले जितनी मात्रामें देना कठिन है। क्योंकि जितना समय दूसरी प्रवृत्तियोंमें जायगा, अतना साक्षरी विषयोंका काम कम हो जाना स्वाभाविक है। यह बात सच है कि प्रवृत्तियोंके साथ अनुब्रंघ साध कर सिखानेकी पद्धतिसे साक्षरी विषयोंका ज्ञान अधिक अच्छी तरह दिया जा सकता है। परंतु वाचन-लेखन द्वारा ही मिल सकनेवाले और जिसके लिये रटावोंका भी आसरा लेना पड़े ऐसे ज्ञानकी अपेक्षा पाठ्यक्रमों और परीक्षाओंमें रखी जाय तो उसके लिये थोड़ा ही समय मिलेगा। जिसका सही अुपाय तो यह है कि पाठ्यक्रममें जड़मूलसे परिवर्तन करने चाहिये और परीक्षाओंका स्वरूप भी जड़से ही बदलना चाहिये। परंतु अभी तक ऐसा किया नहीं जा सका। ऐसे बुनियादी परिवर्तन करनेका या तो साहस नहीं हुआ या वे परिवर्तन करनेकी जरूरत ही महसूस नहीं हुयी। जिसके लिये सरकारी अधिकारियोंके साथ गैर-सरकारी कार्यकर्ता भी जिम्मेदार हैं, क्योंकि जिस प्रयोगके संबंधमें सरकारको सलाह देनेके लिये उसके द्वारा नियुक्त 'वेसिक' ऐज्युकेशन बोर्ड' में सरकारी सदस्योंसे गैर-सरकारी सदस्योंकी संख्या

अधिक है। जिस स्थितिके लिये मैं अपनेको भी जिम्मेदार मानता हूं, क्योंकि अड़ाजी वर्ष पहले बीमार होकर अपंग जैसा बन जानेसे पहले मैं जिस बोर्डका अध्यक्ष था। जिस बोर्डकी सलाहकी सरकारने अपेक्षा की हो, ऐसी एक भी घटना मुझे याद नहीं।

सरकारी विज्ञप्तिमें जितना कहा गया है उतना भी अभी तक तो अच्छी तरह अमलमें नहीं लाया जा सका है। जिन प्रवृत्तियोंकी बात

शालाओंकी  
अध्योग-संबंधी  
वृत्तियां

अपर बतायी गयी है, वे सब शालाओंमें अच्छी तरह होती नहीं देखी जातीं और अधोगके सिलसिलेमें होनेवाला खर्च अधोगसे मिल जानेकी जो आशा प्रगट की गयी है वह भी शायद ही कहीं पूरी हुयी है। अभी तक कच्चे माल और साधनोंका

बिगाड़ होना रोका नहीं जा सका है।\* कुछ शालाओंका प्रबंध सरकारने गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंको सौंप दिया है। उसमें भी अधोगके मामलेमें जैसी चाहिये वैसी प्रगति अभी तक शायद ही कोयी शाला दिखा सकी है। मैंने सुना है कि अकेली कराड़ीकी बुनियादी शालामें स्वावलंबनकी दृष्टिसे आशाजनक परिणाम आये हैं। जिसका मुख्य कारण यह है कि उस गांवकी आबादी कुशल कारीगर लोगोंकी है, वे सन् १९२१ से स्नादीके वारेमें कुछ न कुछ परिश्रम करते आये हैं, वहांके शिक्षक बुत्साही हैं और मुन्हें लोगोंका अच्छा सहयोग मिलता है। परंतु दूसरी शालाओंमें जैसे चाहिये वैसे परिणाम दिखायी नहीं देते। जिसके कयी कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि शिक्षकोंको स्वयं अभी तक अधोग अच्छी तरह नहीं आता। मुन्हें अवकचरा अधोग सिखाकर उनके द्वारा शालामें अधोग जारी करनेकी हम अतावली करते हैं। ट्रेनिंग कॉलेजके, जहां जिस योजनाके अनुसार शिक्षणकी खास तालीम देनेका दावा किया जाता है, अध्यापक वहां चलनेवाले अधोगोंमें से कम-से-कम एक अधोगमें तो अच्छे निष्णात होने ही चाहिये। तो ही अधोगकी विविध क्रियाओंमें

\* यह वर्णन बम्बयी राज्यकी शालाओंका और उनमें भी गुजरातकी शालाओंका है।



बालकोंकी कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियोंके विकासकी कितनी संभावना है तथा अउनके साथ साक्षरी विषयोंकी कौन कौनसी और कितनी जानकारीका अनुबंध हो सकता है, यह वे अपने अनुभवसे जान सकते और सिखा सकते हैं। साथ ही अन्हें आसपासकी कुदरत और समाजका केवल पुस्तकोंसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान नहीं, परंतु प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये। यह भी संभव है कि कुछ अध्यापकोंको जिस प्रयोग पर श्रद्धा ही न हो। ये सब न्यूनतायें तालीम देनेवाले अध्यापकोंमें काफी मात्रामें होंगी। जिन न्यूनताओंको वे पुस्तकोंसे प्राप्त शिक्षा द्वारा और तर्क दीड़ाकर किये गये अनुमानों द्वारा ही पूरी कर लेनेका प्रयत्न करते होंगे। परंतु जिसमें आनंद नहीं आता। हमारा सब काम छिछला ही रहता है। जिनके सिर पर सारी योजनाका व्योरा तय करके देने, योजनाको अमलमें लानेवाले शिक्षकोंको तालीम देने और अन्हें रास्ता बतानेकी जिम्मेदारी है, अन्हींकी ऐसी स्थिति हो तो जिसका अर्थ यह हुआ कि जिस योजनामें अुद्योगको शिक्षाका एक महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुये भी अुसकी पूरी साधना किये बिना जिस योजनाको अमलमें लानेकी जिम्मेदारी हमने अुठाअी है। यह बात वैसी ही है जैसे कोअी ककहरा और बारहखड़ी आये बिना भापा सिखाने लगे अथवा जिस बानकी तालीम देने लगे कि भापाकी शिक्षा कैसे दी जाय। ट्रेनिंग कॉलेजोंमें अुद्योग सिखलानेके लिये हम अलग अुद्योग-शिक्षक रखते हैं। यह अुद्योग-शिक्षक शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योगका महत्त्व नहीं समझता। अनुबंधकी पद्धतिकी अुसे कोअी कल्पना नहीं होती। अुसे जिस प्रकारके शिक्षाशास्त्रका ज्ञान होना चाहिये, यह आवश्यक नहीं माना जाता। जिस अुद्योग-शिक्षकके वेतनका ग्रेड और विभागमें अुसका दरजा साक्षरी विषयोंके शिक्षकोंकी अपेक्षा घटिया होता है। जो शिक्षा-शास्त्री माने जाते हैं अुनका यह खयाल है कि भले ही अुद्योगमें हम निपुण न हों, लेकिन अुद्योगके संचालनके सिद्धान्त तो हम समझते हैं। जिसलिअे अुसके साथ हम दूसरे विषयोंका अनुबंध कर सकते हैं और अुसे करनेकी पद्धति सिखा भी सकते हैं। यह स्थिति दुनियादी शालाके शिक्षकोंके भी शिक्षकोंको, जो ग्रेजुअेट होते हैं, तालीम देनेके लिये खुले हूअे कॉलेजोंके अध्यापकोंकी तथा दुनियादी शालाके अध्यापकोंको तालीम

देनेवाले अध्यापकोंकी है। बुद्धोग-निरीक्षकों (क्वाप्ट सुपरवाइजर्स) की भी कम-ज्यादा यही हालत होती है।

अधिक कठिनायी तो शालाके शिक्षकोंके मानसकी है। अन्हें अनेक कारणोंसे अपनी नौकरीके वारेमें बड़ा असंतोष है। जिसलिअे अुनमें जिस कामके लिअे अुत्साह या रस नहीं पाया जाता।

शिक्षकोंकी कमियां अुनकी जानकारी और योग्यता भी बहुत कम होती है। शिक्षककी नौकरीमें भरती होनेके लिअे प्राबलिक शालान्त परीक्षा पास होनेका जो स्तर रखा गया है, वह बहुत नीचे दर्जेका है। सिखाये जानेवाले विषयोंकी अिन शिक्षकोंको बहुत कम जानकारी होती है। व्यवस्थितता, निश्चितता, नियमितता और स्वच्छताकी तमाम आदतोंके वारेमें अुनमें बहुत कमियां पायी जाती हैं। जिन लोगोंके विचार जीवन-संबंधी साधारण बातोंमें भी अनुभवसे परिपक्व न हुअे हों, वे भी शिक्षक हो सकते हैं। जो मनुष्य होशियार और अुत्साही होता है, वह तो शिक्षकके धंधेमें आता ही नहीं। जो आते हैं वे यह शिकायत करते रहते हैं कि जिस नौकरीमें निर्वाहके लायक पैसा भी नहीं मिलता। अिन शिक्षकोंको बुद्धोगकी तालीम पानेके लिअे आश्रमोंमें अथवा अन्यत्र खोले गये केन्द्रोंमें भेजा जाता है। वहां जानेके लिअे और जाकर अेकाग्र मनसे तालीम पानेके लिअे बहुत थोड़े शिक्षक राजी होते हैं। अविकांश शिक्षक तो यही सोचकर तालीम लेने जाते हैं कि नौकरीमें पड़ गये हैं और नौकरी करनी है, जिसलिअे अफसरोंके हुक्मकी तामील करनी चाहिये; और वहां वे जैसे तैसे अपना समय पूरा करते हैं। जैसे शिक्षकों द्वारा अितना बड़ा प्रयोग करके अुससे अच्छे परिणामोंकी आशा कैसे रखी जा सकती है?

थोड़ी बहुत कठिनायी माता-पिताकी तरफसे भी होती है। वे जिस प्रयोगका महत्त्व नहीं समझते। अुनकी आंखोंके सामने तो पुराने ढंगकी शालाओं ही होती हैं। वे कहते हैं, हम तो अपने बच्चोंको शालामें पढ़ानेके लिअे भेजते हैं, बुद्धोग सीखने और सफाईके काम करनेके लिअे नहीं। नाट्यप्रयोग, पर्यटन वगैरा अुन्हें निरे खेल मालूम

माता-पिताका  
विरोध

होते हैं। जिसलिये वे लोग शिकायत करते हैं कि आप तो बालकोंको खेलाते रहते हैं अथवा उनसे काम कराते हैं, पढ़ाते कुछ नहीं। कामकी तो हमारे घरमें ही क्या कमी है? गांवोंके अज्ञान माता-पिता ऐसा कहें तो समझमें आ सकता है। परंतु मुशिक्षित माने जानेवाले बहुतसे माता-पिता भी बुद्धोगको निकम्मा मानते हैं। वे दलील देते हैं कि हमारे बच्चोंको वादमें कहाँ यह बुद्धोग करना है जो आप उनका समय बिगाड़ते हैं और उनकी असली पढ़ाईमें कमी करते हैं।

दूसरी बड़ी कठिनायी देशकी गरीबीकी भी है। अधिकतर माता-पिताकी आर्थिक स्थिति जितनी तंग होती है कि बच्चोंको घालामें भेजना उन्हें पुसाता नहीं। उनके १०-१२ वर्षके बालक छोटे भाबी-बहनोंको संभालनेमें मांकी मदद करते हैं, डोरोंको चराने या पानी पिलाने ले जाते हैं, बापको खेत पर खाना पहुंचाते हैं, और जिस तरहका दूसरा भी बहुतसा काम करते हैं; और वह काम माता-पिताके लिये जितना उपयोगी बन जाता है कि उसे छुड़वाकर वे बालकोंको ऐसी पढ़ाईके लिये पाठशाला भेजनेको तैयार नहीं होते, जिसकी उन्हें कोई उपयोगिता नहीं दिखायी देती। ऐसे बच्चोंके नाम पाठशालाके रजिस्टरमें दर्ज किये हुये हों, तो भी उनकी हाजिरी बहुत कम रहती है।

जिन सब कठिनायियोंके कारण बिरा प्रयोगको अनुकूल वातावरण नहीं मिलता। उसे पैदा करनेके लिये सब तरफसे प्रयत्न करने पड़ेंगे।

समाज-शिक्षण अथवा लोक-शिक्षण द्वारा माता-पिताकी कठिनायियोंका गलतफहमी दूर करनी होगी। जिस नयी तालीमका

हल महत्त्व उन्हें समझाना होगा और जिसमें उनकी दिलचस्पी पैदा करनी होगी। 'गरीबीके कारण जो

कठिनायियां आती हैं वे तो गरीबी दूर करनेके अुपाय काममें लेकर ही दूर हो सकती हैं। देहातकी गरीबीका प्रश्न हल करनेका काम मुख्यतः रचनात्मक कार्यकर्ताओंका है। अब तो जिसमें सरकारकी मदद भी मिल सकती है। दूसरी तरफ शिक्षकोंकी कुशलता और योग्यताका स्तर अूँचा उठानेकी जरूरत है। उन्हें भरती करनेके लिये जो योग्यता जिस समय

निर्धारित की हुयी है उसे बढ़ाना ही पड़ेगा। भरती करनेके बाद अन्हें जो तालीम दी जाती है वह भी आजसे अधिक ठोस होनी चाहिये। सरकारी विज्ञप्तिमें बताये अनुसार अद्योगके सिलसिलेमें होनेवाले चालू खर्च जितना स्वावलंबन सिद्ध करनेका सरकार द्वारा रखा गया लक्ष्य गांधीजीकी योजनामें विश्वास रखनेवालोंको भले ही कम लगता हो, परंतु यदि सारी बुनियादी मानी जानेवाली शालाओं अस लक्ष्य तक जल्दी पहुँच जायं तो अभी तो हमें संतोष कर लेना चाहिये। अद्योग शुरू करनेके कारण जो अधिक खर्च और विगाड़ होता है, वह तो अेकदम रुक ही जाना चाहिये। साथ ही विज्ञप्तिमें जिन वस्त्र-स्वावलंबी मंडलोंकी बात कही गयी है अुनकी संख्या भी बढ़नी चाहिये। अैसे मंडल शालाओंके लिये अवश्य ही शोभास्पद हैं।

जिन शालाओंका प्रबंध गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंके हाथमें है, अुनसे अवश्य ही अधिक अपेक्षा रहेगी। माता-पिताके सहयोगके अभाव और अुनकी गरीबीके कारण आनेवाली मुश्किलें अुनके काममें भी बाधक होती हैं। ये शिक्षक अधिक अुत्साह और रसपूर्वक काम करनेवाले होते हैं, जिसलिये अुनसे आशा रखी जाती है कि अद्योग वगैरा प्रवृत्तियोंमें वे विद्यार्थियोंकी अधिक दिलचस्पी पैदा करेंगे और कुल मिलाकर अधिक अच्छे परिणाम ला सकेंगे।

## ४

परंतु जितनेसे ही गांधीजीका अुद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। अुन्हें तो जनता पर करोंका भार बढ़ाये बिना शिक्षाको सार्वत्रिक बनाना था।

अित समय देशीराज्योंके विशाल प्रदेश भारतीय पाठशालाओं नहीं संघमें मिल गये हैं। अुनमें कभी प्रदेश अैसे हैं, जहां परंतु परिधमालय बालकोंके लिये शिक्षाकी बहुत कम या नहींके बराबर व्यवस्था है। शिक्षाके विषयमें अुन्हें भारतीय संघके पुराने प्रदेशोंकी कतारमें लानेके लिये वहां बहुतसी नयी शालाओं खोलनेकी जरूरत है। परंतु रुपयेकी कठिनाजीके कारण सरकार शीघ्र बैसा नहीं

कर सकती। रुपयेकी तंगीके कारण शिक्षाके बजटमें जिस वर्ष सरकारने कटौती कर दी है। गांधीजीकी योजनाको अमली रूप दिया जा सके, तो ऐसे प्रश्न आसानीसे हल हो जायें। जिस योजनाको कार्यान्वित करनेका रास्ता हमें खोजना ही होगा। यह भार सरकारी विभाग पर डालना मुनासिब नहीं। गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंको ही योजना पर अमल करके दिखाना चाहिये और उसके परिणाम समाज और सरकारके सामने रखने चाहिये। गुजरातमें स्कूल बोर्डकी शालाओंकी व्यवस्था उससे मांगकर गैर-सरकारी कार्यकर्ता चार-पांच स्थानोंमें प्रयोग कर रहे हैं। उसमें भी परीक्षाओं और पाठ्यक्रमके बंधनोंकी तथा माता-पिताके पर्याप्त सहयोगके अभावकी कठिनावियां बाधक होती हैं। शालाका अर्थ है पढ़ना, लिखना और साक्षरी विषयोंका अध्ययन करना। ये संस्कार लोगोंके मन पर हजारों वर्षोंसे पड़े हुये हैं। लोगोंको कितना ही समझाविये, परंतु भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल वगैरा साक्षरी विषयोंमें और उनमें भी उनकी अक खास तरहकी जानकारीने जो महत्त्व प्राप्त कर लिया है, उसके पैमानेसे ही किसी भी शालाको नापा जाता है। हम यह सोचें कि जिस गांवमें शाला हो ही नहीं वहां शाला खोलकर परीक्षा वर्गोंके साथ उसका संबंध जोड़े बिना हम यह प्रयोग करें, तो वहां भी थोड़े ही दिनोंमें माता-पिता आकर कहने लगेंगे कि आप कुछ पढ़ाते नहीं हैं, आप तो बालकोंसे काम कराते हैं और उन्हें खेलते हैं। जिसलिये मुझे लगता है कि यह प्रयोग करना हो तो विद्यालय अथवा शालाका नाम छोड़कर हमें काम करना पड़ेगा। विद्यालयमें बुद्धिगो लानेके बजाय बुद्धिगालयमें विद्याको ले जाना पड़ेगा। मुझे याद पड़ता है कि एक बार विनोबाने एक प्रसंग पर यह कहा था कि गांव गांव पाठशाला खोलनेके बजाय परिश्रमालय खोलना ही अधिक अच्छा है। गांवके बालक वहां यह समझ कर आयें कि वे पढ़नेके लिये नहीं, परंतु बुद्धिगो करनेके लिये आते हैं। कार्यकर्ता तो सच्चे शिक्षक ही होंगे। उनके मनमें बालकोंकी शिक्षा और सर्वांगीण विकासकी निश्चित कल्पनाएँ होंगी। परंतु वे अपने कार्यका आरंभ बुद्धिगो-शिक्षणमें और बालकोंमें व्यवस्थितता और स्वच्छताकी आदतें डाल कर करेंगे।

ऐसा प्रयोग करनेवाले कार्यकर्ता अथवा शिक्षककी अपनी तालीम और तैयारी बहुत पक्की होनी चाहिये। हमारे गांवोंमें सबसे बड़ा काम वहांकी गरीबी और गंदगी दूर करना है। आप कार्यकर्ताकी योग्यता दूसरी कितनी ही बातें करें, परंतु जब तक लोगोंको अनुकी गरीबी मिटानेका प्रत्यक्ष और प्रयोगसिद्ध अुपाय नहीं बतायेंगे, तब तक लोग आपकी बात नहीं सुनेंगे और आप गांवोंकी कोबी ठोस सेवा नहीं कर सकेंगे। जिसके लिये गांधीजीने खादीका काम बताया है। परंतु खादीका अुद्योग अेक सहायक अुद्योग है। वह फुरसतके समयका अुपयोग करके मनुष्यकी मुख्य आयमें थोड़ी-बहुत वृद्धि कर देनेवाला अुद्योग है। जिस दृष्टिसे अुसका महत्त्व कम नहीं है, परंतु अकेले अुसीसे हमारे गांवोंकी गरीबी दूर नहीं हो सकेगी।

हमारे गांवोंके मुख्य अुद्योग खेती और गोपालन हैं। अुन पर ध्यान दिये बिना अब काम चल ही नहीं सकता। आज हम ऐसी स्थितिमें पहुँच गये हैं कि अिन दोनों बंधोंमें अुत्पादन बढ़ाये खेती और गोपालन बिना हम जी नहीं सकते। नहरों द्वारा अधिक विस्तारमें पानी पहुँचाने और पड़ती जमीनको खेतीके काममें लानेकी योजना पर सरकारकी तरफसे अमल हो रहा है। परंतु जिसके साथ गांवकी मौजूदा खेतीका अुत्पादन भी बढ़ाना जरूरी है। अुसमें अेक बड़ी रुकावट यह है कि जो खेतीके काममें कोबी भाग नहीं लेते या कोबी मदद नहीं देते, अैसे गैर-काश्तकार जमीन-मालिकोंका भार खेती पर पड़ता है। यह भार कुछ हद तक घटानेके लिये सरकारने कानून बनाये हैं। परंतु कानूनोंसे पूरा लाभ अुठानेके लिये किसानोंमें जो साहस और योग्यता चाहिये वह अुनमें पैदा करनेकी जरूरत है। यह काम कार्यकर्ताओंके स्थायी साथ और मददके बिना किसान नहीं कर सकेंगे। अैसे कार्यकर्ताओंको खेती-कामके सच्चे जानकार बनना पड़ेगा। तभी वे किसानोंकी सच्ची मदद कर सकेंगे। जो शिक्षक अथवा शिक्षकगण अुपरोक्त परिश्रमालयकी योजना लेकर गांवमें बैठेंगे, अुनका पहला काम तो गांवकी गरीबीका प्रश्न हल करनेमें गांववालोंके सहायक बनना होगा।

अन्हें खेती और गोधन-सुधारका व्यावहारिक ज्ञान होगा तो ही वे जिसमें सहायक बन सकेंगे। 'व्यावहारिक' शब्द मैंने जान-बूझकर काममें लिया है। क्योंकि कृषि-विज्ञानके ग्रेज्युअेटको हम गांवकी खेती दिखायें, तो वह तुरंत कह देगा कि यहां पानीकी सुविधा नहीं है, किसानोंके पास अच्छे सावन नहीं हैं, जमीन सुधारनेको उनके पास पूंजी नहीं है, जिसलिये कुछ नहीं हो सकता। वह भला होगा तो सरकार नये कुअें खुदवानेके लिये जो मदद देती है अथवा खाद बनानेके लिये खड़े खोदनेका जो प्रोत्साहन देती है, उसके बारेमें लोगोंको समझायेगा। हमें तो किसानको यह बताना है कि उसे बाहरकी मदद न मिले तो भी अपने विशेष परिश्रमसे, विशेष सावधानीसे और आपसमें सहयोग साधकर वह अपनी आजकी स्थितिसे निकलकर एक कदम आगे कैसे बढ़ सकता है, एकके बजाय दो पाँवे कैसे अगा सकता है। कोअी आलोचना करेगा कि आप तो शिक्षकको बहुत बड़ा काम बता रहे हैं, अउसे आप अत्यधिक अथवा न रखने लायक आशा रखते हैं। परन्तु जिस समय मैं साधारण शिक्षककी बात नहीं कह रहा हूँ। सामने जो घना अंधेरा दिखाअी दे रहा है अउमें दीपक बनकर दूसरोंके लिये पथ प्रकाशित करनेवाले अथवा जंगलकी झाड़ियां काटकर दूसरोंके लिये रास्ता बनानेवाले वीर और साहसी शिक्षककी बात कह रहा हूँ। अैसे शिक्षकको सारे गांवको अपनी शाला बनाना होगा। तभी वह अपने परिश्रमालय अथवा ग्रामशालाके लिये लोगोंमें दिलचस्पी पैदा कर सकेगा।

गांवकी खेती और गांवका गोधन सुधारनेकी दृष्टिसे वह खेती और गोपालन दोनोंकी सहकारी समितियां बनाकर संयुक्त खेती और संयुक्त गोपालनकी योजना बनायेगा। अपने परिश्रमालयको भी वह सहकारी समितिका सदस्य बनायेगा। परिश्रमालयके विद्यार्थी भी खेतोंमें मजदूरी करने और डोर चराने जायंगे। शिक्षक स्वयं भी मजदूरी करते-करते लोगोंका पथप्रदर्शन करेगा।

यदि दो शिक्षक जिस प्रयोगके लिये गांवमें गये हों, और दो जनोंका जाना ही ठीक है, तो यह जरूरी है कि दोनोंको खेती और गोपालनके सिवा वस्त्रविद्या और वढ़अीगिरीमें से पहले कदम एक एक अुद्योग आता हो। साथ ही आठ वर्षके

पाठ्यक्रमवाली बुनियादी शाला चलानेके लिये साक्षरी विषयोंका जितना ज्ञान आवश्यक माना जाय अतना तो कम-से-कम अन्हें होना ही चाहिये । अुनकी दृष्टि वैज्ञानिक होनी चाहिये । वे परिश्रमालयमें विद्यार्थी बढ़ानेकी अुतावली न करें । प्रारंभ वे अेक अेक विद्यार्थीसे ही करें तो सुविधाजनक होगा । ये विद्यार्थी स्वतंत्र रूपमें अुद्योगकी कुछ खास क्रियाओं करने लग जायं, तब दूसरे विद्यार्थी भरती किये जायं । कोअी छह महीनेमें तो शुरूमें आये अुअे विद्यार्थियोंसे अुद्योगकी कुछ विशेष क्रियाओं सिखानेके लिये सहायकके रूपमें भी काम लिया जा सकेगा ।

अुद्योग सिखाते-सिखाते ही अुसके स्वाभाविक अनुबंधमें आनेवाली वैज्ञानिक, यांत्रिक और सामाजिक विषयोंकी जानकारी वे जवानी ही विद्यार्थीकी योग्यतानुसार देते रहें । फिर छह महीने या बारह महीनेके बाद वे अक्षर-ज्ञान देना आरंभ करें । अुनके पास किस अुम्रके बालक आते हैं, यह देखकर अुन्हें अपने कामका समय-पत्रक बनाना होगा । संभव है बालवाड़ी, बुनियादी शिक्षा और प्रौढ़-शिक्षा तीनों काम अुन्हें शुरू करने पड़ें । दो शिक्षक कितना काम संभाल सकते हैं और गांवमें से कितने सहायक तैयार कर सकते हैं, जिस पर कामकी व्यवस्थाका आधार रहेगा । जिस कामकी व्यवस्था स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अनुभवके आधार पर करनी है, अुसके अधिक व्योरेमें हम नहीं जा सकते ।

जिस प्रयोगके आर्थिक पहलूका थोड़ासा विचार कर लेना चाहिये । जिस समय हमारे गांव अितनी गरीब हालतमें हैं कि जिन शिक्षकोंको अपनी आजीविकाका पांच-सात वर्षका प्रबंध करके ही शिक्षकोंकी गांवोंमें जाना पड़ेगा । अितने समयमें अुन्हें गांव-आजीविका बालोंको अपनी अुपयोगिता जिस हद तक सिद्ध कर दिखानी चाहिये और गांवकी आर्थिक स्थिति सुधारनेमें अितना हिस्सा ले चुकना चाहिये कि गांववाले अुनके निर्वाहका भार खुशीसे अुठा लें । गांववाले यह भार न अुठा सकें तो अपने शरीर-श्रमसे अपना निर्वाह कर लेनेकी शक्ति तो अुनमें होनी ही चाहिये । अितने असेमें अुनका परिश्रमालय अथवा ग्रामशाला अितनी अच्छी तरह चलने लग गयी होगी कि अुसके अुत्पादनसे शिक्षकोंके निर्वाह अितना



पैसा मिल जाय। परिश्रमालयके लिये छप्पर तथा शिक्षकोंके रहनेकी झोंपड़ियां गांवमें मिल जायें तो उत्तम बात होगी। अनुका किराया देना पड़े तो भी चिन्ता नहीं। वरना उन्हें बनानेके लिये गांववालोंकी मेहनत और बाहरसे कुछ नकद रकम जुटानी पड़ेगी। बिन मकानों पर गांवका ही सार्वजनिक स्वामित्व माना जायगा। थोड़ेसे बढ़ाईके बीजार और बुनाईके लिये अंक दो करघे शुरूमें बाहरसे लाने पड़ेंगे, फिर तो आवश्यक साधन धीरे धीरे गांवमें ही बना लेने चाहिये।

परिश्रमालयमें सीखने आनेवाले जो कुछ उत्पादन करें उसका कुछ भाग उन्हें देना होगा। कुछ भाग व्यवस्थाके लिये सुरक्षित रखा जाय।

विद्यार्थियोंका मेहनताना कितना भाग दिया जाय, यह स्थानीय परिस्थितियां देखकर तय कर लिया जाय। सीखने आनेवालोंको अमुक भाग देनेकी बात मैं बिसलिये कह रहा हूं कि लोगोंकी गरीबी अतनी बढ़ी हुई है कि मजदूरीके बदलेमें उन्हें उचित रकम मिले तो ही उनमें काम करनेका उत्साह रह सकता है। चौदह वर्षके बालकोंको घरका खिला कर शालामें पढ़नेके लिये भेजने जैसी आर्थिक स्थिति जिन माता-पिताकी नहीं हो, उनके बच्चोंको अर्होंने जो कुछ उत्पादन किया हो वह दे देना ही ठीक मालूम होता है।

नयी तालीमके पूरे प्रयोगका प्रारंभ किस ढंगसे किया जा सकता है, उसकी थोड़ीसी कल्पनाके रूपमें मैंने यह कहा है। यद्यपि यह कल्पना है, फिर भी हमारे गरीब गांवोंकी स्थिति और हमारी वर्तमान बुनियादी शालाओंके निरीक्षण पर उसका आकार है। जिस प्रकारके प्रयोग तीन-चार गांवोंमें करनेके लिये पूरी योग्यतावाले साहसी वीर निकल आयें, तो हम उनके पांच-सात वर्षके अनुभवसे गांवीजीकी योजनाके अनुसार शिक्षाका श्रीगणेश करनेकी स्थितिमें आ सकेंगे। और वह श्रीगणेश कर सकें तो उसके आगेके कामके लिये मौजूदा बुनियादी शालाओंके प्रयोग अप्रयोगी सिद्ध होंगे। वे अपनी शक्ति और परिस्थितिके अनुसार कुछ न कुछ तो करती ही हैं। ऐसे मौलिक प्रयोगोंसे बिन शालाओंको बहुत प्रेरणा और

जानकारी मिल सकती है। अैसे मौलिक प्रयोगोंसे ही अनुबंधवाले शिक्षणकी सच्ची कला हाथ लगेगी। वुनियादी शालाओंका पाठ्यक्रम कैसा हो, जिसकी कल्पना भी अैसे प्रयोगोंसे मिल सकती है, यद्यपि गांधीजीकी शिक्षण-योजनामें तमाम शालाओंके लिये अेकसा पाठ्यक्रम बनाना ठीक नहीं। स्थानीय परिस्थितिके अनुसार पाठ्यक्रममें फेरवदलके लिये गुंजाबिश होनी ही चाहिये। परंतु योजनाको तंत्रवद्ध करनेकी जिम्मेदारी जिस पर है, उसका काम तो निश्चित पाठ्यक्रमके बिना चलेगा नहीं। जिस हद तक योजनाके प्राण अवरूद्ध भी जरूर होंगे। जिस प्रकार जिस योजनाको सदा जीती-जागती रखनेके लिये और तंत्रवद्ध पद्धतिसे काम करनेवालोंको प्रेरणा मिलती रहे जिसके लिये स्वतंत्र ढंग पर काम करनेवाले प्रयोग-वीरोंकी जरूरत हमेशा रहेगी।

२० मजी, १९५०

## २

### अितिहासकी शिक्षा — कुछ सुझाव

सन् १९३७ में गांधीजीने वुनियादी शिक्षाकी योजना मित्रोंके सामने रखी, उसके बाद उसका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिये अेक कमेटी नियुक्त की। वह जाकिरहुसेन कमेटीके नामसे प्रसिद्ध है। श्री किशोरलालभाजी उसके अेक सदस्य थे। उस कमेटीके दिये हुअे पाठ्यक्रममें अितिहासका भी पाठ्यक्रम दिया गया है। उसके साथ श्री किशोरलालभाजीका मतभेद था। जाकिरहुसेन कमेटीके पाठ्यक्रममें ठेठ प्राचीन कालसे शुरू करके क्रमशः अर्वाचीन कालके अितिहास पर आना होता है। उसमें पहली कंधामें अर्थात् सात वर्षकी अुम्रके बालकोंको ठेठ प्रारंभिक दशामें जीवन बितानेवाले आदि-मनुष्य किस तरह शिकार करके अयवा जमीनके भीतरसे कंदमूल खोदकर अपना भोजन प्राप्त करते थे, पेड़ों पर या गुफाओंमें रहते थे तथा पेड़ोंकी छाल, पत्ते और चमड़ोंका अुपयोग शरीर ढंकनेके लिये करते थे, और उसमें से किस तरह वे खुराकके लिये

पशुपालन तथा सादी खेती पर आये, रहनेके साधनोंमें अन्होंने कुछ सुचारु किये और कपड़ोंके लिझे अून, कपास और रेशमका अुपयोग करने लगे — वगैरा बातें कहती होती हैं। अिसी प्रकार वे लकड़ी, पत्थर, काँसे और लोहेके हथियार और औजार क्रमशः काममें लेने लगे; घोड़े, गाय, कुत्ते वगैरा पालकर अूनका अुपयोग करने लगे; अपनी आवश्यकताओं, भावनाओं तथा विचार प्रगट करनेके लिझे भाषाका प्रयोग करने लगे, चित्र बनाने लगे और अन्होंने लिखना भी शुरु किया — यह सब कहानीके रूपमें और नाटकके रूपमें अैसी प्रवृत्तियाँ करवाकर सिखाना होता है। अिसके बादके काफी प्राचीन कालके मनुष्यका जीवन कैसा था, यह भी कहानियों द्वारा कहना होता है। अुसमें मिस्र देशमें गुलामोंसे मजदूरी कराकर पिरामिड बनवाये गये, मोहन-जो-दड़ोमें बालक क्या क्या करते होंगे, वेदोंकी शुनःशेपकी कहानी, वगैरा बातें कहना, चीनके पहले पाँच बादशाहोंकी कहानी कहना अथवा अुसका अभिनय कराना होता है। साथ ही अति प्राचीन कालके प्रारंभिक दशके मनुष्यों जैसा जीवन वितानेवाले जो लोग आज भी पृथ्वी पर कहीं कहीं हैं — जैसे अरवस्तानके बर्दू लोग और अुत्तरी ध्रुवके पासके प्रदेशके अेस्किमो लोग — अुनकी बातें भी कहना और अुनका अभिनय कराना होता है। शिक्षक बहुश्रुत और कलावाला हो तो अिसमें बालकोंका रस पैदा कर सकता है और आनन्द भी अुत्पन्न कर सकता है तथा आजकलके साधन-संपन्न जीवनके बजाय अैसा कम साधनोंवाला जीवन भी मनुष्यका किसी समय था, अिसके थोड़े-बहुत संस्कार बालकके दिमाग पर शायद डाल सकता है। अलबत्ता, अिसमें बालकोंकी तर्कशक्ति और कल्पना-शक्ति पर जरूरतसे ज्यादा जोर पड़नेका डर भी है।

हकीकत तो यह है कि हमारे आजकलके थोड़ी जान-भूँजीवाले शिक्षकोंके लिझे ही यह पाठ्यक्रम बड़ा कठिन पड़ता है। चीज मले ही कठिन न हो, परंतु अुसे पायें कहाँसे? प्रान्तीय भाषाओंमें अैसी जानकारी देनेवाली जैसी चाहिये वैसी पुस्तकें नहीं हैं। अिस पाठ्यक्रमके अनुसार प्रान्तीय भाषाओंमें पाठ्यपुस्तकें तैयार की जा सकती हैं। परंतु अिससे हमारा दारिद्र्य नहीं मिटेगा। शिक्षकके पास अिस पाठ्यक्रमके आसपासकी

बहुतसी जानकारी हो, तो ही वह जिन ऐतिहासिक कहानियोंको आकर्षक और प्रभावकारी बना सकता है। अंग्रेजीमें ऐसी जानकारी देनेवाली अनेक पुस्तकें होनेके कारण अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त पाठ्यक्रम तैयार करनेवालोंको जो चीज आसान लगती है, उसका प्रान्तीय भाषाके पूरे साहित्यसे भी अच्छी तरह परिचित न रहनेवाले हमारे शिक्षकोंको बहुत कठिन प्रतीत होना स्वाभाविक है।

श्री किशोरलालभाभीका मत यह है कि इतिहासकी शिक्षा निकटके कालसे शुरू होनी चाहिये और धीरे धीरे प्राचीन काल पर पहुँचनी चाहिये। प्राचीन इतिहासका अध्ययन अपरकी कक्षाओंमें हो। जिसी प्रकार शालाके समीपवर्ती प्रदेशका इतिहास पहले पढ़ाना चाहिये और क्रमशः उसके क्षेत्रका विस्तार करते जाना चाहिये। मुझे यह दूसरी वस्तु अधिक महत्त्वकी लगती है। क्योंकि शहरके बालक जिन वस्तुओं और घटनाओंमें रस ले सकते हैं और उन्हें आसानीसे समझ सकते हैं, उनमें गांवके बालक रस नहीं ले सकते। न उन्हें आसानीसे समझ सकते हैं। गांवके बालकोंका रस बिल्कुल दूसरी बातों और घटनाओंमें होगा और अन्हींको वे आसानीसे समझ भी सकते हैं। जिसी प्रकार जंगलके पासके प्रदेशके, पहाड़के पासके प्रदेशके और समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशके अर्थात् भिन्न भिन्न प्रदेशोंके बालकोंकी दिलचस्पी और समझके विषय अलग अलग होंगे। अधिक परिचितसे कम परिचित और उससे अपरिचितकी ओर—जिस क्रमसे आगे बढ़नेका सिद्धान्त हम स्वीकार करते हैं, तो भिन्न भिन्न प्रदेशोंके बालकोंके लिये इतिहास और भूगोलका क्रम हमें भिन्न भिन्न रखना चाहिये। जिसलिये एक ही प्रकारकी पाठ्यपुस्तकोंसे सब जगह काम नहीं चलेगा। हालमें ही श्री विनोवाने सेवाग्राममें एक भाषण दिया, जिसमें यह विचार प्रगट किया है कि नयी तालीमको नित्य नयी तालीम रहना पड़ेगा। अन्होंने यह भी कहा कि भिन्न भिन्न प्रदेशोंके लिये भिन्न भिन्न पाठ्यपुस्तकें होनी चाहिये।

“प्रत्येक गांवकी परिस्थिति अलग-अलग होती है। अन्हींके अनुसार शिक्षाका विचार करना पड़ेगा। जहां नदीतट होगा वहां एक प्रकारकी, जहां पहाड़ होगा वहां दूसरे प्रकारकी, और जहां

आसपास जंगल होगा वहां तीसरे प्रकारकी शिक्षा होगी। प्रत्येक गांवका वातावरण देखकर उसकी रचना करनी होगी। जिसके लिये खास अेक ही तरहकी योजना अथवा निश्चित पुस्तकें काम नहीं देंगी। आजकल सब प्रान्तोंके लिये अेक ही प्रकारकी पुस्तकें सारी शालाओंमें चलती हैं। जिससे गांवकी जो विशेषता और भिन्नता होती है उसकी कोअी कल्पना नहीं आती, अेक सर्वसामान्य पुस्तकमें बालकोंको रस नहीं मिलता और अलग अलग प्रकारके गांवोंके लिये वह कामकी नहीं रहती।

“हमारी पाठशालाओंके लिये पुस्तकोंकी जरूरत रहेगी, परंतु वे अलग अलग गांवोंकी स्थितिको ध्यानमें रखकर अलग अलग ढंग पर लिखी हुअी होंगी। जो अितिहास सेवाग्रामकी शालामें पढ़ाना होगा उसमें सेवाग्रामकी सब संस्थाओंका अितिहास होगा, उसमें यह भी होगा कि सेवाग्राम गांव कैसे बना, अनुमें गांवके वृद्ध जनोंका अनुभव होगा और जिस प्रकार वह सजीव अितिहास होगा। भूगोलमें भी सेवाग्राम और उसके आसपासकी स्थितिका विशेष वर्णन होगा। जिस गांवमें हम रहते होंगे उसे दुनियाका मध्यबिन्दु मानकर उसके आसपास दुनिया मौजूद है, यह समझकर भूगोलकी शिक्षा दी जायगी।”

जिस पुस्तकमें श्री किशोरलालभायीकी ‘जड़मूलसे क्रान्ति’ नामक पुस्तकसे अनुका ‘अितिहासका ज्ञान’ नामक लेख लिया गया है। उसमें अुन्होंने अेक दूसरी ही और बड़े महत्त्वकी वस्तु पर जोर दिया है। अुन्होंने कहा है कि अितिहासके ज्ञान और शिक्षणको आजकल बहुत महत्त्व दिया जाता है, परंतु वह अितने महत्त्वका पात्र नहीं है। क्योंकि किसी भी घटनाका सोलह आने सच्चा अितिहास हमें शायद ही मिल पाता है। स्वयं अपनी की हुअी या कही हुअी बातोंकी भी मनुष्यकी स्मृति अितनी जल्दी मन्द पड़ जाती है कि थोड़े समय बाद उसमें सत्य और कल्पनाका मिश्रण हो जाता है। साथ ही, अितिहास पढ़कर हम भूतकालके वारेमें जो कल्पनाओं करते हैं वे अुचितसे बहुत अविक व्यापक होती हैं। लोक-जीवनके वर्णनके रूपमें जो जानकारी दी हुअी होती है, वह अधिकांशमें

लोगोंके बहुत थोड़े भागके जीवनकी जानकारी होती है। फिर भी हम उसे समस्त जनसमाजकी स्थितिके रूपमें समझते हैं। किसी राजा अथवा राजधानीके शहरकी समृद्धिके वर्णन परसे पाठकोंके मन पर ऐसा असर पड़ जाता है मानो सारा देश समृद्ध होगा। नालंदा जैसे विद्यापीठों अथवा गुरुकुलोंके वर्णन पढ़कर ऐसी छाप मन पर पड़ती है कि सारे देशमें विद्याका खूब प्रचार होगा और देशके सभी बालक जिन विद्यापीठों और गुरुकुलोंमें पढ़ने जाते होंगे। मार्गी जैसी विदुषीके वर्णन परसे यह छाप मन पर पड़ती है कि प्राचीन कालमें सभी स्त्रियां खूब पढ़ी-लिखी होंगी। किन्तु यह मानना वैसा ही होगा, जैसा आजकल सरोजिनी नायडू अथवा विजयालक्ष्मी पंडितका वर्णन पढ़कर यह मान लिया जाय कि भारतमें सभी नहीं तो बहुत बड़े भागकी स्त्रियां ऐसी ही विद्वान और आगे बढ़ी हुई होंगी। जिसलिजे इतिहास पढ़कर न केवल व्यापक अनुमान ही नहीं लगाने चाहिये, बल्कि तुरन्त यह भी नहीं मान लेना चाहिये कि इतिहासमें आनेवाली सभी घटनाओं ठीक उसी तरह हुई होंगी।

आश्रमकी पाठशाला और गुजरात विद्यापीठ दोनोंमें इतिहास पढ़ानेका काम मैंने कभी बार किया है। उस अनुभवसे मैं तो जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जब तक विद्यार्थी बड़ी मुन्नका न हो जाय तब तक उसे व्यवस्थित इतिहासकी शिक्षा देना व्यर्थ है। आजका हमारा जीवन — हमारे आदर्श, हमारी आकांक्षायें, हमारी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं सब — आज तकके हमारे इतिहासका परिणाम हैं। यह समझनेके लिये पहले तो हमें आजके जीवनका अच्छी तरह निरीक्षण करना चाहिये। बादमें उसके कारणोंकी जाँच करनी चाहिये। अपने देशका विचार करें तो हमारी वर्तमान स्थिति हमारे पूर्वजोंके अच्छे कार्यों और भूलोंका तथा विदेशोंकी जिन जिन प्रजाओंसे हमारे देशका संबंध हुआ उसका परिणाम है। जिस प्रकार हमारी वर्तमान स्थितिका भूत-कालकी अनेक घटनाओंके साथ कार्य-कारण-संबंध है। यह सब समझानेका इतिहासका दावा है। परंतु जैसा श्री किशोरलालभाजी कहते हैं, हमें अपुलव्व इतिहास ही यदि दोषपूर्ण अथवा भूलभरा हो, तो उससे न केवल हमारी वर्तमान स्थितिका सही स्पष्टीकरण नहीं मिलेगा, प्रत्युत

वह हमें गलत रास्ते पर भी ले जायगा। यह सब समझना प्राथमिक या माध्यमिक शालाके विद्यार्थीकी शक्तिसे बाहर माना जायगा। जिसे सामाजिक परिस्थितिका और समाजके प्रश्नोंका कुछ न कुछ खयाल हो, वही इतिहासको अच्छी तरह समझ सकता है और उससे लाभ उठा सकता है। मैं मानता हूँ कि जिस समय प्राथमिक और माध्यमिक शालाओंमें जिस प्रकारका और जिस ढंगसे इतिहास पढ़ाया जाता है, उससे विद्यार्थीको कोई लाभ नहीं होता, बल्कि नुकसान ही होता है। मेरी राय यह है कि इतिहास पढ़ाना हो तो भी कॉलेजों अथवा उत्तर-वृत्तियादी शालाओंमें ही पढ़ाना चाहिये। और, वह इतिहास भी अच्छी तरह परिमार्जन करके नयी दृष्टिसे लिखा जाना चाहिये।

यह नयी दृष्टि कैसी हो? पहले तो हमें यह वस्तु मानकर चलना होगा कि भूतकालमें हुयी सभी बातें याद रखने लायक या इतिहासमें दर्ज करके रखने जैसी नहीं होतीं। कुछ बातें तो खास तौर पर भूल जाने योग्य होती हैं। वैसे भूल जाने लायक वस्तुओंको हम इतिहासकी पुस्तकोंमें दर्ज करते रहेंगे, तो हम मनुष्य मनुष्यके बीच अप्रिय-द्वेष और वैरभावको जीवित रखेंगे और उसे पोषण देंगे। अदाहरणके लिये, हिन्दुओंका मुसलमानोंके साथ आठ सौसे भी अधिक वर्षोंका संघर्ष रहा है। उसमें हिन्दू-मुसलमानोंमें कभी बार लड़ाइयां हुयी हैं, और दोनों जातियोंने एक-दूसरेके साथ मेल भी साधा है। जिस हद तक मेल साधा है, उस हद तक दोनोंको लाभ हुआ है। मनुष्य मनुष्यके बीच भ्रातृप्रेम और समानताकी इस्लामी भावनाने हिन्दुओंकी अधिकार-भेद और अंच-नीचकी भावना पर बनी हुयी समाज-रचनाको सुधारनेमें कम असर नहीं डाला। जब भारतमें राज्यसत्ता मुसलमानोंके हाथोंमें थी, तब पंद्रहवींसे अठारहवीं सदीके बीच हिन्दुओंमें जो अनेक साधु-सन्त हो गये, उन पर इस्लामी अकेसरवाद और भ्रातृभावका बहुत असर पड़ा होना चाहिये। किसी प्रकार मुसलमान औलियों और सूफीपंथके मस्त फकीरों पर वेदान्त और उपनिषदोंके सिद्धान्तोंका प्रभाव भी कम नहीं पड़ा। जिस प्रकार दोनोंके उत्तम तत्त्वोंके सुमेलसे नयी भारतीय अथवा हिन्दुस्तानी संस्कृति निर्माण हुयी है। भारतकी भाषाओं, लोगोंके रीति-रिवाज वगैरा किसी

सुमेलके परिणाम हैं। यह सब किस प्रकार हुआ, जिसे हिन्दू सन्तों तथा मुसलमान औलियोंके जीवनका और दोनों जातियोंकी आम जनता पर पड़नेवाले अनुके असरका वर्णन करके समझानेका काम मैं इतिहासका मानता हूं। उत्तर भारतका इतिहास जैसे मुसलमानोंके साथ हुआ संसर्गसे रंगा गया, वैसे दक्षिण भारतके इतिहासमें भीसाबियोंके संसर्गका असर भी काफी पाया जाता है। इतिहासमें यह सब देखने और समझनेके बजाय राजाओंके इतिहास परसे — अन्होंने अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं तथा स्वार्थोंको पूरा करनेके लिये देशकी भिन्न भिन्न जातियोंको अक-दूसरेसे लड़ाया हो, कभी अक जातिको तो कभी दूसरीको अपने पदमें लेकर उस पर मेहरबानी दिखायी हो अथवा उस पर नाराजी जाहिर की हो और अन्तसे अलग अलग जातियोंमें औप्या-द्वेषके बीज बोनेका प्रयत्न किया हो उस परसे — यह अनुमान लगाकर कि दोनों जातियां अक-दूसरेके साथ द्वेष करती अथवा लड़ती रही हैं हम अन्ते इतिहासमें दर्ज करें, तो यह बालकोंको औप्या-द्वेषका इतिहास पढ़ाने और बिस प्रकार औप्या-द्वेषको जिन्दा रखनेका ही काम होगा। आज मुसलमानोंके संबन्धमें हिन्दुओंके मनमें और हिन्दुओंके संबन्धमें मुसलमानोंके मनमें जो द्वेष और अविश्वास अथवा अशुचिकी भावना है, वह बिस बातका परिणाम है कि दोनों जातियोंके बीच हुआ लड़ावियोंकी घटनाओंको हम विसृप्तिके गर्तमें नहीं दफना सके, कुछ याद रखने जैसी हकीकतोंको अच्छी तरह दर्ज करके नहीं रख सके, कुछ तथ्योंका विकृत रूपमें मुल्लेख किया गया है और कुछ घटनाओं जो कभी घटी ही नहीं सच्ची ऐतिहासिक घटनाओंके रूपमें इतिहासमें प्रचार पा गयी हैं। यों तो इतिहास-शोधक कहते हैं कि बौद्धों और ब्राह्मणोंके बीच तथा गुजरातमें जैनो और ब्राह्मणोंके बीच कम लड़ावियां नहीं हुयीं। परंतु साधारण इतिहासोंमें यह चीज नहीं आती, असलिये जनताको बिस विषयका कोसी खयाल नहीं है और असलिये बिन धर्म-संप्रदायोंके लोगोंके बीच आज कोसी औप्या-द्वेष नहीं है। ऐसा ही हिन्दू-मुसलमानों और भीसाबियोंके संबन्धमें करनेकी जरूरत है। पाकिस्तान अलग हो गया है, फिर भी हिन्दुओं और मुसलमानोंको पाकिस्तान और भारत दोनोंमें अकट्ठे रहे बिना कोसी चारा नहीं है।



अक देशके भीतर रहनेवाली अलग अलग जातियोंके वारेमें जैसा विचार करना चाहिये, वैसा ही विचार अलग अलग देशोंके वारेमें भी करना चाहिये। अक देशकी दूसरे देशके साथ लड़ाई होनेकी घटनाओं अतिहासमें दर्ज करके रखी जाती हैं। परंतु अक-दूसरेके बीचके जीवन-व्यवहारकी अनेक शान्तिपूर्ण घटनाओं अतृप्त मचानेवाली न होनेके कारण दर्ज नहीं की जातीं। असलिये बालकोंके मन पर यह असर पड़ता है कि विदेशियोंको तो शत्रु जैसे मानकर उनसे हमेशा होशियार ही रहना चाहिये। अससे बालकोंके दिलमें गलत देशाभिमान अतृप्त होता है, जिसके कारण अैसी भावनाको पोषण मिलता है कि अपने देशकी बात अुचित हो या अनुचित, परंतु हमें तो अपने देशका ही पक्ष लेना चाहिये।

अतिहास-लेखकको भूतकालकी बातें दर्ज करनेमें बड़े विवेकसे काम लेना चाहिये। असे अक भी असत्य बातका कभी प्रचार नहीं करना चाहिये। तथ्योंको विकृत रूप देना असत्य जैसा ही अथवा अससे भी बुरा है। परंतु सच्ची घटनाओंको, जिनकी तहमें मनुष्यकी मूर्खता अथवा रागद्वेष हो, भुला दिया जाना चाहिये। अप्या-द्वेष पीढ़ी दर पीढ़ी बना न रहे परंतु भुला दिया जाय और मानव-कुलकी भिन्न भिन्न शाखाओं अक-दूसरेके नजदीक आयें और आपसमें मिलजुल कर रहें, अैसा वातावरण पैदा करनेमें अतिहासकार काफी हाथ बंटा सकता है।

मैंने अपर कहा है कि अतिहासकी शिक्षा अैसे विद्यार्थियोंको दी जा सकती है, जिनके विचार और अुम्र कुछ पक गये हैं और जो सामाजिक घटनाओंकी तहमें रहनेवाले कार्य-कारण-संबंधको समझ सकते हैं। तो फिर क्या बुनियादी शालाओंमें अतिहासके लिये स्थान हो सकता है? मेरे खयालसे उनमें कालानुक्रममें गूँथा हुआ सारा अतिहास पढ़ानेकी जरूरत नहीं। कालानुक्रमका थोड़ा-बहुत खयाल भी बड़ी अुम्रमें ही हो सकता है। असलिये बुनियादी शालाओंमें तो बच्चोंको दिलचस्प लगने-वाले अतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओंकी बातें ही कही जा सकती हैं। जनकल्याणके लिये, स्वाभिमान तथा शीलकी रक्षाके लिये, अन्तःकरणके विश्वासके लिये अथवा अैसे ही किसी अूँचे हेतुके लिये कुर्बानी करनेवाले तथा कष्ट सहन करनेवाले व्यक्तियों, संतजनों, धर्मवीरों, साहसी प्रवास-

वीरों, वैज्ञानिक शोधकों, विद्याके अुपासकों और लोकनेताओं आदिकी बात अिसमें आ सकती हैं। अिनमें अच्छे राजाओंकी बातें भी शामिल की जा सकती हैं। व्यक्तियों तथा समूहके सत्याग्रहकी घटनाओंको स्थान दिया जा सकता है। ये बातें कक्षावार चढ़ते क्रमसे रखी जानी चाहिये। अिससे पूरे अितिहासका ज्ञान तो नहीं मिलेगा, मगर अितिहासके विषयका कुछ परिचय हो जायगा। समाजको किस मार्ग पर ले जाना है, अिसका खयाल शिक्षकके मनमें सदा ही होना चाहिये और अैसी बातोंके द्वारा अुस दिशामें जानेकी वृत्तिको पोषण मिलना चाहिये।

२२ मर्ची, १९५०



# शिक्षाका विकास

पहला भाग

सावरमती



## शिक्षाके लक्षण

जीवामियां नामक अेक मुसलमान किसान है। पहले वह तेलीका धन्वा करता था, परंतु कुछ वर्षोंसे खेती कर रहा है। मामूली लिखना-पढ़ना जानता है। खेतीके कामसे फुरसत मिलती है तब वह बड़कीका काम करता है; बड़कीके रूपमें वह साप्ताहिक बाजारमें विक सकनेवाला सामान — खाटें, पेटियां, चलनियां वगैरा बनाता है; साथ ही वह कलजी करने और क्षालनेका काम तथा सादा लुहारी काम भी जानता है। खाट भरनेकी सन वगैराकी डोरी वह अपने-आप धुन लेता है।

अुसके अक्षर अच्छे नहीं हैं, (परंतु सुलेखनकी परीक्षामें कितने अध्यापक पास होंगे, यह शंकास्पद ही है) फिर भी वे पढ़े जा सकते हैं। वह अितना व्यवहार-कुशल है कि अुसे कोभी आसानीसे धोखा नहीं दे सकता। गांवका मुखिया या बाजारका दुकानदार अुसके 'भोलेपनका लाभ' नहीं अुठा सकता।

मैंने अुसे हमेशा अुत्साहपूर्ण और आत्म-विश्वासी देखा है। दो-अड़ाबी महीनेसे वह नबी जमीन लेनेके लिये अेक आदमीसे बातचीत किया करता था। परन्तु बातका निपटारा न होनेसे घर बैठ गया। फिर भी अुसके मुख पर चिन्ता नहीं थी, क्योंकि वह घड़ीभर भी निकम्मा नहीं बैठता था। वह अपने बड़कीके और दूसरे फुटकर कामोंसे गुजरके लायक कमा लेनेका विश्वास रखता था।

वह अकेला नहीं है। अुसे अपने सिवा और चार आदमियोंका पोषण करना पड़ता है। उनमें दो छोटे बच्चे हैं; अेक लड़का 'फेरी' में और सामान अुठाने व ले जानेमें मदद करने लायक ही है। मुसलमान होनेके कारण अुसकी स्त्री बाहर मजदूरीके लिये नहीं जाती।

अुसे समझ लेनेकी जितनी फुर्तत मिलती है अुसके हिसाबसे वह देशकी स्थिति काफी समझता है। खादी, चरखा, असहयोग, गांधीजी — बिन सबके बारेमें वह बिलकुल अनजान नहीं है। बिनमें वह दिल-चस्पी भी लेता है; परन्तु अुसकी भावनाओं जितनी चाहिये अुतनी विकसित नहीं हुयी हैं, अिसलिये अिन कामोंमें अुसका स्वाभाविक अुत्साह तीव्र रूपमें प्रगट नहीं होता। फिर भी वह कहता था कि अुसने युनायी सीन्त्रनेके लिये आग्रहमें रहनेकी मांग की थी।

लगभग अेक महीने तक मुझे रात-दिन अुसके सहवासमें आनेका मौका मिला। अुस असेमें मैंने अुसके या अुसके वच्चाँके मुंहसे अेक भी अपशब्द नहीं सुना। अुसके वच्चाँमें मुसलमान जातिका स्वाभाविक अुद्धत तेज था और अुस तेजके कारण अुनका अूधम माता-पिताको जब अनहू हो जाता तब वे वच्चाँको मारते भी थे, परन्तु अुनमें क्षण क्षणमें क्रोधसे या गाली देकर वच्चाँको बुलानेकी आदत नहीं थी। जब गुस्सा करनेकी बात न होती तब प्रेमभरे 'बेटा' शब्दसे ही वे वच्चाँको संबोधन करते थे। कभी कभी फारसी या अुर्दू भजन गाते भी मैंने अुस कुटुम्बको सुना था।

अुनके जीवनमें मुझे अेक खामी मालूम हुयी। वे लोग आठ-आठ दिन तक नहाते नहीं थे और कपड़े तो न जाने कितने दिनमें धोते होंगे। गंदगीसे अुन्हें नफरत नहीं होती थी।

अिस खामीको छोड़ दें तो मेरे खयालसे अिस मियाँको हम पूर्ण कुमार-मंदिरकी शिखा पाया हुआ मान सकते हैं। हमारे देशका अेक-अेक मनुष्य अितना शिक्षित दिखायी देगा, तब हमारा प्राथमिक शिक्षाका प्रश्न हल हुआ माना जायगा।

अिसमें से कितनी शिखा अुसे पाठशालामें मिली होगी? 'शिक्षा' का प्रचार करनेवाले अिस प्रश्नको किस दृष्टिविन्दुसे देखें, अिसका मेरे खयालमें यह भायी अेक अच्छा पदार्थपाठ हमारे समक्ष पेश करता है।

अेक बार मैं थोड़े दिनके लिये आवू पर्वत पर गया था। मुझे गाड़ीके 'ठेकेदार' के कार्यालयमें जाना था। रास्तेका मुझे अच्छी तरह

पता नहीं था। जिसलिये मैं राह चलनेवाले आदमियोंसे पूछता पूछता आगे बढ़ रहा था। दो गोरे विद्यार्थी सामनेसे आ रहे थे। एककी मुट्ठी तेरह-चौदह वर्षकी और दूसरेकी ग्यारह-बारह वर्षकी होगी। मैंने जिन लड़कोंसे ठेकेदारके कार्यालयका रास्ता पूछा।

बड़े लड़केने थोड़ी-सी सूचना दी, परन्तु वह छोटे लड़केको अवूरी लगी। वह जमीन पर घुटनोंके बल बैठ गया और अंगुलीसे रेतमें उसने हम जहां खड़े थे वहांसे ठेकेदारकी दुकान तकका रास्ता नक्शा खींचकर बता दिया। फिर रास्तेमें आनेवाली सूचक दुकानों और जगहोंके स्थान बताये और समझाया कि 'अस कुर्मेके पास सामनेकी ओर जरा तिरछे जो भूरा बंगला आयेगा वही ठेकेदारका दफ्तर है।'।

यह समझाने और रास्तेका नक्शा खींचनेका काम अस लड़केने जितनी चपलता और विवेकसे किया कि मुझे असा लगा कि सचमुच यह लड़का 'शिक्षित' है।

रास्ता सीधा नहीं था। दाओं बाओं तरफ वह कभी तरहसे सांपकी तरह मुड़ता था; परन्तु उसने मुझे लगभग ठीक रास्ता बता दिया। मैं विद्यापीठ कार्यालयसे रोज सावरमती आश्रम जाता हूं, परन्तु आज भी मुझे असा नहीं लगता कि मैं रास्तेके सारे मोड़ अच्छी तरह खींच कर बता सकता हूं। मुझे असा लगे बिना नहीं रहा कि वह लड़का मुझसे अधिक अच्छी तरह 'शिक्षित' हुआ है। फिर भी मैं अपने नामके आगे दो अुपाधियां लिख सकता हूं और शिक्षाके विषयमें अनेक आचार्य मुझसे सलाह लेनेकी अपेक्षा रखते हैं। मुझे नहीं लगता कि जबसे मैं राष्ट्रीय मंदिरमें रहा तबसे मैंने विद्यार्थियोंसे जितनी 'शिक्षा' ली है उतनी मैंने अुन्हें दी होगी।

परन्तु जिस दशासे मैं लज्जित नहीं हूं, क्योंकि छोटे बालकोंसे शिक्षा लेकर ही सच्चा शिक्षक बन सकनेकी मैं आशा रखता हूं।

३

मैं आश्रमसे कार्यालयमें आ रहा था। सामनेसे बारह सालका एक लड़का तेज चालसे चला आ रहा था। लड़का मुझे नहीं जानता  
 शि. वि-४



था, मैं उसे नहीं जानता था। उसने मुझे 'वन्देमातरम्' के स्वागतभरे शब्दोंसे नमस्कार किया। उसकी चाल और आवाज दोनोंमें विनयके साथ तेज दिखायी दिया।

फिर उसने पूछा, "आश्रम यहाँने कितनी दूर है?"

"दो मील। वहाँ तुम्हें किससे काम है?"

"मेरे पिता आश्रममें काम करते हैं, उन्हें बुलाने जाना है।"

विस लड़केको 'साहित्य, संगीत और कला' कितने आते होंगे, यह मैं नहीं जानता। परन्तु मुझे उसकी चालमें, उसकी आवाजमें और उसकी विनयमें 'शिक्षा' के लक्षण साफ दिखायी दिये।

'सावरमती', १९२३

## २

### शिक्षित और अशिक्षित

#### १

पिछले साल आश्रमसे विद्यापीठके रास्ते जाते हुये मुझे चने-मुरमुरे वेचनेवाला एक मुसलमान बूढ़ा रोज मिलता था। धीरे धीरे सलामसे आगे बढ़कर हम बातचीत करने लगे। उसकी बातों परसे मैंने जाना कि कुछ वर्ष पहले वह मिलमें काम करता था और बहुत अच्छा कमाता था; बादमें बीमारीके कारण कमजोर हो जानेसे मिलमें काम करने लायक नहीं रहा। उसने बताया, "सेठने मुझसे कहा कि 'मियां, अब तुम दफ्तरमें आकर चपरासीकी जगह पर बैठे रहना; तुम मरोगे तब तक मैं तुम्हें वेतन दूंगा।' परन्तु विस प्रकार सेठकी मेहरबानी पर जीना मुझे पसन्द नहीं आया। हम दो आदमी हैं और मेरी सासके साथ शामिलके शामिल और अलगके अलग रहते हैं। मेरी सास कहती, 'बेटा, अब मैं तुझे नौकरी करने नहीं जाने दूंगी। तू शहरसे चने-मुरमुरे लाकर सामने बाड़जके नाके पर बैठा कर। खुदा शाम तक जितना देगा उससे हम काम

चला लेंगे।' जिसलिअे मैं सुबह शहरसे यहां आता हूं और दोपहरको नदी पार करके सासके घर खाना खा आता हूं। शामको सासके घर टोकरी रख देता हूं और घर चला जाता हूं। जिस प्रकार मेरा बंधा चल रहा है। शाम तक चार-छह आने मिल जाते हैं, और जितना मिल जाय तो क्यों किसीके गुलाम बनकर रहें?"

मुझे ऐसा नहीं लगता था कि जिस आदमीने लिखना-पढ़ना सीखा होगा। शायद थोड़ा-बहुत आता भी होगा। परन्तु यह नहीं कहा जायगा कि वह और उसकी सास शिक्षित नहीं थे।

२

जिससे भिन्न प्रकारका अनुभव मुझे थोड़े महीने पहले एक राष्ट्रीय शालाके विद्यार्थियोंने कराया। वहांके विद्यार्थियोंने अपनी परेशानियोंकी कुछ बातें मुझे कहीं। वे यदि सच हों (और शिक्षक कहते हैं कि वे सच हैं) तो वे हमारे कौटुम्बिक जीवनकी अद्योगतिका कठणाजनक दर्शन कराती हैं।

जिस शालामें अंग्रेजीकी पांचवीं कक्षा तक पढ़ाई होती है। अधिकांश विद्यार्थी बारहसे पंद्रह वर्षकी आयुके और खासे सुखी घरोंके हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुकुलकी कीर्ति 'प्राण जाय पर वचन न जाय' की टेंक पर बनी थी; जिस गांवके पाटीदार कुलोंके वारेमें मुझे विद्यार्थियोंने कहा कि वे अपनी कीर्ति बड़ी हवेली और विवाहमें किये जानेवाले भारी खर्च पर मानते हैं। पास रुपया हो और दूसरे सद्ब्ययके मार्ग सूझने जितनी संस्कारिता न आती हो तो उसका उपयोग ऐसे कामोंमें करनेकी वृत्ति होना स्वाभाविक है। अमीरीके साथ ऐसा बड़प्पन प्राप्त करनेकी इच्छा तो आम तौर पर रहेगी ही; जिसलिअे यह परिस्थिति कितनी ही अनिष्ट हो तो भी उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

परन्तु विद्यार्थियोंने कहा, "जिसलिअे हमारे माता-पिता हमसे कहते हैं कि 'अब पढ़ना बन्द करो; अफ्रीका जाओ और रुपया कमाकर लाओ। पढ़ना ही हो तो सरकारी स्कूलमें पढ़ो जिससे अच्छी नौकरी मिले।' हमारे विवाह अभीसे कर डाले हैं। माता-पिता कहते हैं कि,

‘जिस विवाहमें अितना खर्च हो गया; तुम्हारी पढ़ाबी पर अितना खर्च होता है। यह पैसा ला दो नहीं तो घरसे बाहर निकलो।’”

अपने पुत्रको कोबी माता-पिता जैसे वचन कह सकते हैं, जिस पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। किसीने पिताके लिये ‘आशा रखनेवाला बाप’ कहा है, परंतु माताके लिये तो वह भी ‘आशा न रखनेवाली मां’ कहता है। परंतु जिन विद्यार्थियोंमें से कुछने अपनी माताओं पर भी ऐसी भापाका आक्षेप किया। मैं जिसे न मान सका और जिसलिसे मैंने यही संमझ लिया कि जिन विद्यार्थियोंमें ऐसी कोबी बुद्धतता रही होगी जिसे सहन न किया जा सके। और ऐसा समझकर मैंने अुनसे मातृ-भक्ति और पितृ-भक्तिके बारेमें बात की। मैंने यह भी कहा कि कभी कभी श्रोघके आवेशमें ऐसे शब्द माता-पिता बोल देते हैं, परंतु ये अुनके हृदयके स्थिर भाव नहीं होते। जिसलिसे ऐसे शब्दोंसे यह कल्पना न कर ली जाय कि ‘मां-बाप पैसेके ही सगे हैं।’

मैंने अुस समय विद्यार्थियोंसे कहा था और अब भी मैं मानता हूं कि यह सच नहीं हो सकता कि लड़के माता-पिताको कमाबी लाकर दें तो ही अुन्हें प्यारे लगते हैं। यदि लड़के राम या श्रवण जैसे माता-पिताकी सेवा करनेवाले, विनयी और आज्ञाकारी हों, तो वे निर्धन होने अथवा गरीबी और अीमानदारीसे गृहस्थी चलानेका आग्रह रखनेके कारण माता-पिताको बुरे लगें, यह हो ही नहीं सकता। मेरा तो पिताके बारेमें भी यही अनुभव है और माताके लिये तो संसारके अधिकतर लोग जिसकी साक्षी देंगे कि माताके लिये पुत्रका प्रेम अितना बंधनकारक होता है कि वह तंगी भुगतकर भी पुत्रसे दूर रहना नहीं चाहती।

परंतु जिन विद्यार्थियोंने ब्योरेवार अपने घरकी जो स्थिति मेरे सामने रखी, अुस परसे ऐसा माननेके लिये कुछ कारण जरूर है कि हमारे कुटुम्बोंका वातावरण अितनी अधोगतिको पहुंच गया है कि अुसमें माता-पिताके मनमें रुपया ही मुख्य वन जाता है—पैसे मिलनेकी दृष्टिसे ही बालकोंका पालन-पोषण किया जाता है, अुनके विवाह किये जाते हैं, अुन्हें पढ़ाया जाता है।

कोभी रम्य स्वप्न देखनेके बाद सत्य जागृतिमें आने पर मन बहुत बार यह माननेको तैयार नहीं होता कि वह स्वप्न झूठा ही था; विसी तरह यह मानते हुये हृदयको आघात लगता है कि माता-पिताके वारेमें मेरी कल्पना गलत और विद्यार्थियोंकी वतायी हुयी अपरोक्त स्थिति सच्ची ही होगी। मैं मानता हूँ कि जिसका दूसरा पहलू भी जरूर होगा। फिर भी बालकोंके प्रति माता-पिताकी शुद्ध बुद्धिके वारेमें दससे पंद्रह वर्षके बच्चोंके हृदयमें शंका अठ सकती है, यह चीज ही मुझे आघात पहुंचाने-वाली लगती है; और वह—पढ़ायी कितनी ही हुयी हो, परंतु—शिक्षाका अभाव सूचित करनेवाली लगती है।

जिसके विपरीत पचास वर्षके बूढ़ेको 'बेटा' कहनेवाली और स्वतंत्रता खोनेकी अपेक्षा थोड़ी कमाबीसे संतोष माननेवाली सासकी भावना कितनी स्वाभिमानी और प्रेमपूर्ण जान पड़ती है!

### ३

तीसरा अनुभव भी आश्रम और विद्यापीठके बीचके रास्तेका ही है। जिस रास्तेसे आनेवाले एक गांवके बालक बाइजकी राष्ट्रीय शालामें पढ़ते थे। जाते आते दोनों समय रोज हमारा मिलाप होता था और एक बार मैं राष्ट्रीय शाला देख आया था जिसलिये हमारे बीच काफी मित्रता हो गयी थी। दूरसे मुझे सामने आता देखकर वे 'जय जय, किशोरलालभायी, जय जय किशोरलालभायी' कहकर दौड़ते हुये आते; मुझसे घड़ी निकलवाकर कितने वजे हैं, वह जाननेका लगभग रोजका कार्यक्रम रहता; कभी कभी वे चनोंकी मांग करते। शालामें छुट्टी होती तब वे रास्तेके पेड़ पर चढ़ जाते। मुझे पेड़ परसे देखकर डालीके पीछे छिप जाते और पुकार कर ढुंढवानेकी कोशिश करते थे। हमारी यह मित्रता कभी महीनों तक चली।

परंतु बादमें अक्समें एक विघ्न आ गया। कुछ मास पूर्व बाइजमें अंत्यज-प्रवेश होनेसे जिन लड़कोंने राष्ट्रीय शालाका त्याग कर दिया और वे मुझसे नाराज हो गये। संभव है उनका यह भी खयाल हो कि बाइजमें अंत्यजोंको लानेमें मेरा हाथ है। अब वे सरकारी शालामें जाते हैं।

अब भी हम आमने-सामने मिलते हैं। परंतु अब मुझे 'जय जय' कैसे किया जा सकता है? मैंने एक बार अनुसे कहा, "तुम सरकारी शालामें भले ही जाओ, परंतु जिससे हमारे बातें करनेमें क्या हर्ज है?" परंतु यह मित्रता अब अनुके लिये स्वप्नवत् हो गयी। पहले तो वे मेरी आंखोंसे अपनी आंखें न मिलने देते। मुझे दाहीं ओर चलता देखकर वे बाहीं ओर हो जाते और मुंह झुट्टी दिशामें कर लेते। एक विद्यार्थी, जो पहले मुझे देखते ही हंस देता था, अब हंसी न आने देनेके लिये मुंह वन्द करके दूसरी दिशामें गरदन मोड़कर चलने लगा।

मित्रताके स्थान पर तिरस्कारकी वृत्ति उत्पन्न हो जाय तो वह कितनी तेजीसे बढ़ती है, यह मुझे अब देखनेको मिलने लगा।

धीरे धीरे गिन लड़कोंकी वृत्तिमें फर्क पड़ने लगा। अब वे रास्ते या आंखोंकी दिशा नहीं बदलते, परंतु आंखें बड़ी करके और छाती निकालकर सामने आते हैं और मेरे दोनों ओरसे पासमें होकर चले जाते हैं।

एक दिन मुझे छोड़कर बहुत आगे चले जानेके बाद मैंने उन्हें 'केसला, केसला' चिल्लाते सुना। उस दिन जिसका मर्म मैं न समझ सका; परंतु बादमें अनुभव बढ़ता गया। अब उन्हें अंसा नहीं लगता कि जिस तरह चिल्लानेके लिये उन्हें बहुत दूर जाना चाहिये। अब मेरे मुंह-पर ही कभी-कभी ऐकाघ गालीके साथ यह आवाज लगायी जाती है। मैं जानता हूं कि यह आदत लंबे समय तक टिकेगी नहीं। थोड़े दिन बाद अनुको जिस चिल्लाहटमें आजका-सा रस नहीं मालूम होगा। और जब चित्तको खींचनेवाला कोयी और विषय मिल जायगा तब वे मुझे भूल जायंगे। परंतु यह वस्तु विचार करने जैसी है।

वे लड़के सातसे दस वर्षके बीचके हैं। अनुकी पढ़ाई राष्ट्रीय शालामें या सरकारी शालामें नियमित रूपमें होती रही है। फिर भी उन्हें सच्ची शिक्षा देनेका घरमें या पाठशालाओंमें प्रयत्न हुआ हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। अनुकी स्वाभाविक मधुरताका भी हनन होने लगा है, यह स्थिति कितनी दयाजनक है?

## ज्ञान या अज्ञान ?

मैं जब छोटा था तब एक वृद्ध मारवाड़ी महिला मेरे घर पर हमेशा आती थी। सम्राट जॉर्ज जब राज्याभिषेकके लिये भारतमें आनेवाले थे, तब उस प्रसंग पर उत्सव मनानेके लिये जैसे स्थान स्थान पर घूमघाम मची हुई थी वैसे हमारे गांवमें भी हो रही थी। एक दिन उस महिलाने मुझसे पूछा, “भाभी, यह क्या हो रहा है? लोग कहते हैं कि राजा आनेवाला है, राजा आनेवाला है। कौनसा राजा आनेवाला है?”

मैंने समझाया, “हमारे देशके बादशाह जॉर्जका राज्याभिषेक होनेवाला है।”

महिलाने कहा, “परन्तु हमारे देशमें तो रानीका राज है न?”

मैं चकित हो गया। रानीकी मृत्यु हो गयी, एक दशक तक राज्य करके अेडवर्डकी मृत्यु हो गयी और अब उसके लड़केकी राज्य करनेकी वारी आ गयी, यह सब जिस महिलाको आज भी जानना बाकी है। वॉशिंगटन भिविगको अमरीकामें बीस वर्षमें हुअे फेरवदलकी विलक्षणता दिखानेके लिये रिप वान विकलको बीस साल तक सुला देना पड़ा। परन्तु हमारे देशमें जिस महिलाको तो सारे गांवके एक-एक देवालयके दर्शनोंका नियम पालन करनेके लिये रोज सुबह छह से बारह बजे तक घूमते रहना पड़ता है, तो भी उसे बारह वर्षमें रानीके मरनेकी बात मालूम हुयी।

मैंने रानी और अेडवर्डके मरनेकी बात कही। उसने कहा : “तो हमारे देशसे अब त्रियाराज चला गया और पुरुषका राज हो गया!”

बेचारी जिस महिलाको ऐसा लगता था कि जिसने बड़े मुल्क पर एक स्त्री राज करे, यह कैसी अद्भुत बात है! उस स्त्रीका कितना बल और पराक्रम होगा!

ब्रिटिश राज्यकी रचना जिस प्रकारकी है कि उसमें राजगद्दी पर बैठनेवाला पुरुष हो या स्त्री दोनों अकेले ही निःसत्त्व हैं और उस गद्दी पर बैठनेके लिये किसी बल-पराक्रमकी जरूरत नहीं होती, अकेले विशेष वंशमें विशेष प्रकारसे होनेवाले जन्मकी ही जरूरत पड़ती है; राजगद्दी पर बैठनेवाला राज्य करनेवाला नहीं होता, राज्य करनेवाला दूसरा ही होता है—यह सब जिस महिलाको किस तरह समझाया जा सकता है, जिस बारेमें मैं विचारमें पड़ गया।

फिर भी, वह महिला कोअी अज्ञानमें संतोष माननेवाली नहीं थी। मरी जवानीमें वैधव्य प्राप्त हो जानेके बादसे लकड़ीके सहारे चलनेकी शक्ति रही तब तक बहूको बाधा होती तब लड़केको खाना बनाकर खिलाने और व्रत न हो उस दिन अकेले बार पेटको भाड़ा देनेके सिवा बाकीका सारा समय उसका साधुओंकी खोजमें जाता। गांवमें कोअी नये वैरागी आये हैं, यह सुनते ही वह सबसे पहले उनकी पूछताछ कर आती। भारवाड़ी होने पर भी नियमित रूपमें 'वचनामृत' सुन-सुन कर उसकी भाषा उसे आने लगी थी और 'भक्त-चिन्तामणि' तथा 'निर्गुणदासजीकी बातें' सुनकर श्री सहजानंद स्वामीका चरित्र उसकी दृष्टिके सामने स्पष्ट तैरता रहता था। भजन तो उसे अनेक आते थे और वृद्धावस्थामें भी नये नये सीख लेती थी। अकेले तरफ उसे अपने पातिव्रत पर यह विश्वास था कि उस पर कुदृष्टि रखनेवालेका भला हो ही नहीं सकता और दूसरी तरफ रक्षा करनेवालेके रूपमें अश्वर पर उसकी दृढ़ श्रद्धा थी। और वह जिसका वर्णन भी करती थी कि जवानीके दिनोंमें उसे तंग करने आनेवालोंके क्या हाल हुये थे।

ये सब ज्ञान प्राप्त करनेकी जाग्रत पिपासाकी निशानियां थीं, परंतु काफी विवेक-शक्ति न होनेसे यह ज्ञान-पिपासा फलीभूत नहीं हो सकती थी और जिज्ञासा होते हुये भी अज्ञान ही बना रहता था। क्योंकि आप उसके सामने चिढ़ानेके लिये भी 'छी' करके खड़े रहें या लंबा बांस लेकर उसके सामने जायं तो वह वहींकी वहीं दस मिनट बैठ जाती, कोअी अच्छा चिकना या रंगीन पत्थर दे दे तो वह उसके देवताओंके संग्रहमें जुड़ जाता और फिर रोज उसकी भावपूर्वक सेवा होती। जिस प्रकार

ताम्रपात्र भरकर देवता उसके पास जमा हो गये थे। गांवके अेक अेक शिवालय और वैष्णव मंदिरके सिवा हमारे जैसेकि यहां जो खानगी देवसेवा होती वहां भी उसकी वारियां बंधी हुई थीं। गरज यह कि उसमें श्रद्धा थी, पवित्रताका शौर्य था, परंतु विवेकके अभावमें अनन्यता — दृढ़ धारणा — नहीं आ पाती थी, और जिसलिअे व्यवहारज्ञान या अध्यात्मज्ञानमें से अेक भी बढ़ नहीं पाता था।

## २

दूसरी बात ताजी है। दासबाबूकी मृत्युको चार दिन हुए थे। मैं आश्रमसे कार्यालय जा रहा था। रास्तेमें अेक खारी(अहीर) से भेंट हुई। बहुत दूरसे अकेले ही चल कर आनेकी अकताहटके कारण या वातूनी स्वभाव होनेके कारण, कोअी निमित्त मिलते ही (जो मुझे याद नहीं) उसने मुझसे बातें करना शुरू कर दिया।

उसने कहीं सुना था कि अहमदाबादके किसी मंदिरके वैरागियों और मुसलमानोंमें झगड़ा हो रहा है। वह मुझसे जिसके बारेमें पूछताछ करने लगा। परंतु जिस विषयमें मैं उससे भी अविक अज्ञानी निकला। मुझे जिस विषयकी कुछ भी जानकारी नहीं थी। जिसलिअे झगड़ेकी जड़ वगैरा उसीने मुझे समझाअी और अब यह जाननेको अुत्सुक था कि आगे मामला कहां तक पहुंचा है। उसे आश्चर्य हुआ कि मैं शहरके अितने नजदीक रहते हुए भी कुछ नहीं जानता, परंतु जो सत्य था अुने मैं कैसे बदल सकता था!

परंतु अुने तो किसी न किसी तरह बातें करके रास्ता काटना था, जिसलिअे उसने विषय बदला और मुझसे परिचित विषय पर पूछना शुरू किया।

“गांधी महात्मा यहीं हैं?”

“नहीं, बंगाल गये हैं।”

“गांधी महात्मा क्या बंगालके हैं? वे बंगालमें क्यों रहते हैं?”

मैंने कहा, “नहीं, भाअी, वे तो यहींके हैं। काठियावाड़के हैं। किसी कामसे बंगाल गये हैं।”



“यहांके हैं? किस गांवके?”

“पोरबंदरके।”

“यह बंगाल तो वही है न जो गोपीचंद राजाका मुल्क कहलाता है?”

“हां, वही।”

गोपीचंद राजाके कारण ही उसे बंगालका परिचय था। उसने गोपीचंद राजपाट त्यागकर विरागी बने उसका भजन गाना शुरू किया। उसका आरंभ मैं भूल गया हूं। परंतु बीच-बीचमें उसकी आलोचनाओं चलती रहती थीं।

“कितना बड़ा राजा था! देखिये न:

‘ओंडा, पिंगळा, सुखमणी नारी,

वारसें परणी ने तेरसें कुंवारी!’\*

कितना बड़ा वैभव और माया छोड़ते उसे जरा भी देर लगी? और हमने छोटा-सा अंक गवा पाला हो, तो उसकी माया भी हम नहीं छोड़ सकते!”

मैं सोचने लगा कि जिस आदमीको ज्ञानी कहूं या अज्ञानी। अंक तरफ गोपीचंद राजा और उस खवारीके बीच कितनी ही शताब्दियां बीत गयीं। जिस बीच बंगालमें कितनी ही अथल-पुथल हो गयी, जिसकी उसे जरा भी गंव नहीं। उसके मस्तिष्कमें तो गोपीचंद राजाके साथ ही बंगालका साहचर्य है! दूसरी तरफ हमारे पढ़े-लिखोंने गोपीचंदका नाम सुना होगा, कदाचित् उसका नाटक देखकर थोड़ी-बहुत उसकी

\* जिस गुजराती लोक-भजनका शब्दार्थ है—(गोपीचन्द राजाकी) ओंडा, पिंगळा और सुखमणी वगैरा सैकड़ों स्त्रियां थीं; उसके रनवासमें १२ सौ विवाहित और १३ सौ कुंवारी लड़कियां थीं। जिस भजनमें हठयोग सम्बन्धी जिडा, पिंगला, सुपुम्णा वगैरा नाटियोंका रूप बिगड़कर ऊपर जैसा हो गया है और नाटिका नारी बनकर अपरोक्त ओंडा, पिंगळा वगैरा राजाकी सैकड़ों स्त्रियोंकी कल्पना विचित्र ढंगसे घुस गयी है।

क्या जानी होगी, परंतु बंगाल या अज्जैनका मुन्हें कुछ भी खयाल नहीं होगा। जिस रवारीके लिजे गोपीचंद और बीसवीं सदीके बीचका बंगालका इतिहास नींदमें चला गया; हममें से बहुतोंको जैसे नींदके बीच-बीचमें सपने आ जाते हैं, वैसे ही इतिहासमें पठानों या अकबर या शुजाके संबंधमें बंगालकी कुछ कुछ झंकी हो जाती है, परंतु असा लगता है कि बंगालके इतिहासका प्रभात सिराजुद्दौला या क्लाइवसे ही हुआ है।

गोपीचंदका धार्मिक जीवनके साथ कोसी संबंध न हुआ होता, तो जिस भाषीको गोपीचंदका नाम सुननेका प्रसंग न आता। धार्मिक जीवनके साथ जुड़ जानेके कारण गोपीचंद-संबंधी जानकारी भक्तों द्वारा भजनोंके जरिये अनजानसे अनजान हिन्दू तक पहुंच गयी; परंतु अन्य जानके अभावमें अस जानकारीका भी शुद्ध स्वरूपमें पहुंचना कितना कठिन है, यह 'बीडा, पिंगळा, सुखमणी नारी, वारसें परणी ने तेरसें कुंवारी' की विचित्र रूपमें भ्रष्ट हुई साखी दिखा देती है। यह भ्रष्टता केवल भाषाकी भ्रष्टता नहीं, परंतु पदार्थकी पहचान संबंधी भ्रष्टता भी है।

दूसरी ओर जिस रवारीको गोपीचंद राजा असा लगता है मानो कलकी ही दुनियाका विषय हो; परन्तु हमारी आजकी दुनियाके विषय — दासबाबू — का उसके जीवनमें क्या स्थान है? दासबाबू मर गये, यह कहनेसे अस पर क्या असर होगा? जब वह नहीं जानता कि असा कोसी आदमी था, तब उसके मर जानेकी बात जानकर अस पर भला क्या असर होगा? और अनुसे भी अधिक प्रसिद्ध महात्मा गांधी हैं, जिनका नाम तो अनुने किसी प्रकार सुन लिया है, परंतु गोपीचंदके बंगाली होनेका अनुसे जितना पता है अनुना गांधीके गुजराती या बंगाली होनेका अनुसे पता नहीं है!

दासबाबूके स्मारकका चंदा जिकड़ा करनेके लिजे गांव-गांव जाकर हम किस मुंहसे अस स्मारकके लिजे रुपया देनेको अने रवारीसे कह सकते हैं, यह विचार सहज ही मनमें बुझता है।

बड़ेसे बड़े नेताओं द्वारा निकलनेवाले सभी अखबारों, पुस्तकों और भाषणोंका यह ज्ञान देनेमें कितना हाथ है? तमान राजनीतिक हलचलोंमें जनताका यह वर्ग किस प्रकार दिलचस्पी ले सकता है? जनताका

अधिकतर भाग क्या जिस ख़ारीकी कोटिका ही नहीं है? और जिस जनताकी जागृतिके बिना क्या देशकी गाड़ी आगे बढ़ेगी?

तीसरी तरफ यह भी सोचने लायक बात है कि जिस ख़ारीके जीवनको अितना संस्कारी बनानेमें किसका हाथ रहा है। गोपीचंद विरागीका अितिहास अुसने किसकी ढालामें पड़ा? गधे जितनी माया भी हम नहीं छोड़ सकते, यह आत्म-परीक्षण अुसे कहाँसे मिला? हमारे देशके अज्ञानीसे अज्ञानी भागमें भी जां संस्कारिताके कुछ बीज हैं, अुन्हें ढालनेवाला कौनसा वर्ग है? यह कार्य करनेवालोंकी जीवन-पद्धति कौनसी है? हमारे देशकी परिस्थिति ही जिस प्रकारकी है कि अपने कल्याणके लिये व्याकुल भक्त ही अुस जनता तक पहुँच सकते हैं; दूसरोंका कल्याण करनेका भार लेकर बाहर निकले हुये लोग अुसे स्पर्श नहीं कर सकते।

यह सच है कि अुन भक्तोंमें भी संकुचित दृष्टि रह जाती है। जिसके कारणों पर स्वतंत्र रूपमें विचार करना चाहिये। फिर भी देशको संस्कृत करनेमें अुनका जो बड़ा हाथ है और अुनके जीवनमें देशको संस्कृत बनानेकी जो शक्ति है, अुसका अुचित मूल्य स्वीकार किये बिना काम नहीं चलेगा।

अँसी है हमारी जनता। अेक तरफ अुसमें कुछ सुसंस्कारोंके बीज हैं, दूसरी ओर अज्ञानकी गहरी पैठी हुयी घास है। हमारी वर्तमान शिक्षा अुस अज्ञानकी घासको खोद निकालनेका कुछ प्रयत्न कर रही है; परंतु जिस प्रकार हमारे जैसे केवल पढ़े-लिखे आदमी खेतमें निंदाअी करने लगे तो बाजरे और घासका भेद न जान सकनेके कारण घासके साथ बाजरा भी अुखाड़ डालेंगे, वैसे ही हमारी मौजूदा शिक्षा अक्सर अुस अज्ञानके साथ सुसंस्कारके बीजोंको भी खोद ढालती है। नोदनेवालेको अुपयोगी वनस्पति और जंगली वनस्पतिके बीचका भेद जानना चाहिये; वैसे ही हमें भी अपनी जनताके अज्ञान और अुसके सुसंस्कार दोनोंको पहचानना चाहिये।

## परिचारक भील

जेलके अस्पतालमें मुझे बार-बार जाना पड़ा था। अस्पतालके परिचारकोंमें एक भील कैदी था। वह विलकुल जड़ और स्मरण-शक्तिहीन लगता था। अमुक पचासके लगभग होगी। मुझ पर बहुत ममता रखता था। मुझे बार-बार यह विचार आता था कि मैं उसे क्या सिखाऊं। दो-चार बार मैंने उसे लिखना सीखनेको ललचाया, परंतु जिस वारेमें वह निराश हो गया था। वह जवाब देता था, “मुझे बहुत लोगोंने बार-बार पढ़नेके लिये कहा, परंतु उनकी बात मुझे जंची नहीं। अब आप कहते हैं जिसलिये ऐसा लगता है कि पढ़ लेता तो अच्छा होता; परंतु अब बूढ़ा हो गया हूं, अब मुझे नहीं आयेगा।” मैंने उसे स्वयं पढ़ानेका वचन दिया और यह विश्वास दिलाया कि जरूर आ जायगा। परंतु उसे विश्वास नहीं हुआ।

सारे जीवनमें उसने दो भजन जितना साहित्य भी नहीं सीखा था। हिन्दू-धर्मके किसी देवी-देवता अथवा राम-कृष्णके नाम भी वह नहीं जानता था, तब अवतारोंके चरित्र तो कहांसे जानता? मैंने सोचा कि पढ़ नहीं सकता तो कहानियों और भजनों द्वारा ही उसे कुछ न कुछ ज्ञान दिया जाय।

काल्पनिक कहानियोंके लिये अपना विरोध अलग रखकर मैंने उसे चिड़ा-चिड़ी और पशु-पक्षियोंकी कहानियां सुनाना आरंभ किया। वह अमंगलपूर्वक सुननें जरूर बैठता और जिस तरह हंसता मानो उसे बड़ा मजा आ रहा हो। परंतु उसकी आंखोंसे मुझे मालूम हो जाता था कि कहानीका एक अक्षर भी वह नहीं समझता। मैं उसे पूछता: “क्यों भाजी, मैं किसकी बात कह गया, बता तो?” तब वह जवाब देता: “यह मुझे पता नहीं चलता। आप बात कहते हैं सो मैं सुनता हूं। परंतु याद रखना मुझे नहीं आता।”

मैं विचारमें पड़ गया। मुझे लगा कि जिस अुत्रमें जिन तुच्छ बातोंमें उसे मजा नहीं आता होगा। फिर मैंने रामकी कहानी कहना शुरू किया। एक दिन थोड़ी-सी कही। दूसरे दिन पूछा कि कल शामको क्या बात कही थी। जवाबमें ‘शून्य’। मैंने फिर शुरुसे वह कहानी

कही और तीसरी शामको फिर पूछा। फिर वही शून्य। उसे यह भी याद न रहता कि मनुष्यकी बात कही थी या जानवरकी!

मैं सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। एक दिन मैंने उनसे यों ही पूछा: "तुझे तीर-कमान चलाना आता है?" वस; प्रश्न पूछनेकी ही देर थी। जोरसे 'हां' कहकर वह अत्यंत उत्साहमें आ गया। और मुझसे कहने लगा कि वह ऐसा बढ़िया तीरंदाज है कि उड़ते पक्षियोंको भी नीचे गिरा सकता है।

कहानियोंका थोड़ा-सा मसाला मुझे मिल गया। नाम दिये बिना मैं उसे अब धनुर्विद्याकी विविध कहानियां कहने लगा। दशरथके शब्दवेदकी, अर्जुनके द्रौपदी-स्वयंवरकी, द्रोण द्वारा तीरसे कुओं से बाहर निकाली हुई गिल्ली बगैराकी कहानियां मैंने उसे सुनायीं। अब उसकी स्मृति जाग्रत हो गयी। ये सब बातें वह अच्छी तरह याद रख सकने लगा। (नामोंको छोड़कर—नाम तो वह किसीका भी याद नहीं रख सकता था। आठ नौ महीने वह हम सबके साथ रहा, परंतु अंत तक वह चार जनोंको भी नामसे नहीं पहचान पाया। वे 'मोटे भाभी' और वे 'गोरे भाभी' जिस प्रकारके वर्णनसे ही वह निर्देश कर सकता था।)

दशरथकी अपेक्षा अर्जुनके बीचें हुअे यंत्र-मत्स्य पर वह अधिक मुग्ध हुआ और द्रोण पर तो वह फिदा ही हो गया। "सच्चा वामन, सच्चा वामन! कुओंमें गिरी हुई गिल्लीको तीरसे उछाल कर बाहर निकाल लिया! वह सच्चा तीरंदाज था!"

जिस परसे मुझे एक सूचना मिल गयी कि वह कौनसी बातें समझ सकता है और याद रख सकता है।

थोड़े समय बाद 'यह कैसे सूझा?' नामक इसी पुस्तक मेरे पास आयी। जिस भीलके साथ एक दूसरा कैदी भी था। भील जितना जड़ था, उतना ही वह चालाक था। लगभग सारी जिन्दगी उसने जेलमें ही गुजारी थी। मुझे ऐसा लगा कि यह कहानी उसके अधिक योग्य है, और उसे कहनेका मैंने विचार किया। साथमें भील भी बैठता था। मैंने यह आशा नहीं रखी थी कि भील जिसे समझ सकेगा। परंतु परिणाम मुझे अत्यंत आश्चर्यजनक मालूम हुआ।

मैं यथाशक्ति नाम छोड़ कर ही बातें करता था; कभी कोबी नाम देना ही पड़ता तो एक भील या दर्जी असा साधारण नाम दे देता अथवा रूस्तीके बजाय कोबी देशी नाम रख देता। कहानी कहां तक पहुंची है, यह मुझे भील दूसरे दिन बारीक व्योरेके साथ कह सुनाता। वह राम-लक्ष्मण अथवा बालकृष्णकी बातें नहीं समझ सकता था; परंतु जिस रूस्ती कहानीके सब पात्रोंके अटपटे पराक्रम बारीकीसे याद रख सकता था!

यह कहानी मैं पूरी नहीं कर सका; बिसलिअे बुसका महत्त्वका जो अंतिम भाग था वहां तक नहीं पहुंचा जा सका। परन्तु मैंने देख लिया कि राम-लक्ष्मण जैसे पात्रोंके साथ बुसका अपने जीवनमें कोबी संबंध नहीं बंधा था, बिसलिअे बुनकी बातोंमें बुसकी स्मृति मंद थी; परन्तु झूठे नोट बनानेवाले, दीवारमें सेव लगानेवाले और धोड़े चुरानेवाले लोगोंको वह अच्छी तरह पहचानता था, बिसलिअे बुनकी कहानियां बुसे आसानीसे याद रहती थीं।

मैंने यह सोचकर बिसका वर्णन किया है कि मानसशास्त्री और शिक्षक बिस अनुभवसे बहुत कुछ निष्कर्ष निकाल सकेंगे। बिस पर अधिक विवेचन करनेका काम मैं बुन्हींको सौंपता हूं।

‘श्रीदक्षिणामूर्ति’, अगस्त १९३१

५

## सभ्यताके आधार-स्तंभ

पढ़े-लिखे लोगोंको शारीरिक परिश्रम करनेमें शर्म आती है। आठ-दस घंटे दफ्तरमें बैठना, नकलें करना, टाइप करना, हिसाब मिलाना, प्रूफ देखना, पुस्तकें लिखना वगैरा अूँचे माने हुअे काम करनेमें वे बितने नहीं मुकताते, जितने खाना बनाना, कपड़े अथवा बर्तन धोना, झाड़ू लगाना, पीसना, कूटना, कातना, नालियां धोना, पाखाने साफ करना वगैरा कामोंसे मुकता जाते हैं। किसी तरह यदि बुन्हें कभी छोटा-न्ता भी बोझा जुगकर चलना पड़े तो बड़ी शर्म आती है। तब बड़्झा, लूहार,

राज वगैरा कारीगरोंका काम तो वे थोड़ा भी कैसे सीख सकते हैं ? और यदि छोटा-सा भी ऐसा काम निकल आये तो उन्हें हाथ जोड़कर खड़े रहना पड़ता है। कलम, स्याही और कागजसे चिपटे रहकर काम करनेमें कितने ही घंटोंका श्रम क्यों न करना पड़े और उससे अर्थप्राप्ति कितनी ही कम क्यों न हो, तो भी उसमें प्रतिष्ठा मानी जाती है। परन्तु मेहनत-मजदूरीका काम, भले उसमें स्नायुओं पर जोर पड़ता हो, शरीरको लाभ होता हो और रुपया भी अविक मिलता हो, अप्रतिष्ठित माना जाता है।

अमुक काम अंचा अथवा प्रतिष्ठायुक्त है और अमुक नीचा अथवा प्रतिष्ठाहीन है, यह खयाल कभी कभी लोकसेवकोंमें भी पाया जाता है। हरिजन वगैरा पिछड़ी हुई जातियोंमें विद्या-प्रचारकी अपनी प्रवृत्तियोंके साथ हम कभी कभी बिन विचारोंका भी प्रचार कर देते हैं। 'विद्या' पढ़ो जिससे तुम अच्छी नौकरी पा सकोगे, पाठशालामें शिक्षक बन सकोगे और तुम्हें घर-नौकर, मजदूर, कारीगर और भंगीका काम नहीं करना पड़ेगा।' जिस प्रकारकी बातें कभी कभी दलितोंके सेवक नासमझीमें कह डालते हैं। किसी तरह स्त्रियोंसे भी कहा जाता है कि 'आज तक तुमने खाना बनाया, वर्तन मले, बच्चोंको संभाला; अब चूल्हा छोड़ो, चक्की बन्द कर दो, बच्चोंको छायालयमें भेज दो, और बाहर निकलकर समाजके काममें लगे।' जिस प्रकारकी बातोंसे यह मालूम हो जाता है कि ऐसे कामोंके बारेमें लोकसेवकोंके कैसे खयाल हैं।

मेरी समझमें ऐसे विचार हम खुद अपने लिये रखें यह भी दुर्भाग्य है। तब जिन लोगोंकी हम सेवा करना चाहते हैं, उनके दिमागमें ऐसे विचार उत्पन्न करना उनकी सेवा नहीं परन्तु कुसेवा ही है। विचार करने पर मालूम होगा कि दफ्तरोंके कामके बिना मानव-समाजके लिये सम्य जीवन विताना असंभव नहीं है। परन्तु भोजन, बच्चोंका पालन आदि गृहिणी-कर्म, झाड़ना, लीपना, मांजना, धोना आदि भृत्यकर्म और अनाज अगाना, मकान बनाना, कपड़े धुना वगैरा किसान और कारीगरके कर्मके बिना सम्य जीवन जीना असंभव है। इतिहाससे भी जान पड़ता है कि अनेक जातियां ऐसी हो गयी हैं, जिनमें कारकुनी या लेखन-वृत्ति

न होते हुअे भी वे संस्कृत और समृद्ध थीं। अितना ही नहीं, परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि कारकुनी — कार्यालयविद्या — कायस्थविद्या तो हाल ही में अुत्पन्न हुआ है। मनुष्य-समाजका काम हजारों वर्ष तक अुसके बिना ही चलता रहा। और आज भी यह माननेका कोबी कारण नहीं कि यदि सारी कार्यालय-व्यवस्था अेकदम बन्द कर दी जाय, तो मनुष्य-समाज पर भूकम्प जैसी कोबी बड़ी आफत टूट पड़ेगी।

अंग्लैण्डमें वकील, डॉक्टर तथा अध्यापकके धंधोंको माननीय धंधे कहनेका रिवाज है। अिन धंधोंको साधारण लोगोंने यह विशेषण नहीं दिया है, परन्तु अिन धंधोंवालोंने स्वयं ही अपने धंधोंके लिअे यह विशेषण लगा लिया है। अिसी प्रकार हम दफ्तरका काम करनेवालोंने कारकुनीके कामको प्रतिष्ठित धंधा मान लिया है।

वास्तवमें देखा जाय तो मानव-सम्यताकी स्थिति और वृद्धिके लिअे मुंशीगिरीकी अितनी जरूरत नहीं, अितनी गृहिणी-कर्म, भृत्यकर्म, कृषिकर्म तथा कारीगरके कामकी है। भले यह कर्म स्त्री करे या पुरुष, शिक्षित लोग करें अथवा अशिक्षित, हाथसे करें या यंत्रसे, प्रेम और धर्मबुद्धिसे करें अथवा रुपयेके लिअे करें। अिस समाजमें धान्य पैदा करना, पीसना, कूटना, खाना बनाना, कपड़े बुनना और सीना, धर, कपड़े और वर्तन साफ करना, मुहल्ला, नगर और श्मशान स्वच्छ रखना अित्यादि काम सुव्यवस्थित ढंगसे होते रहनेका प्रबंध न हो, अुस समाजमें कितने ही विद्वान तर्कशास्त्री, प्रतिभावान कवि, प्रखर गणित-शास्त्री, सूक्ष्म ज्योतिषशास्त्री, कुशल मंत्री और कार्यालय-व्यवस्था करनेमें प्रवीण प्रबंधक हों, तो भी अुसकी सम्यता टिक नहीं सकती। अिन कार्योंके लिअे यंत्रका अविकसे अधिक अुपयोग हो, तो भी अिन यंत्रोंके लिअे किसी मनुष्यके हाथकी जरूरत रहेगी ही। और अिन हाथोंसे जमीन जोतने, बीज बोने, धान्य अिकट्टा करने, अुसे कूटने, पीसने और पकाने, बच्चोंको पालने, मकान बनाने, कपड़ा बुनने, नालियां, पाखाने और मुहल्ले साफ करने वगैराके यंत्र चलेंगे, वे हाथ सम्यताके आधार-स्तंभ होंगे; न कि वे हाथ अिनसे केवल कागज पर अक्षर लिखे जाते रहेंगे। यह सच है कि पड़े-लिखे लोगोंने मानव-सम्यताको बड़ानेमें और सुशोभित करनेमें काफ़ी शि. वि-५



भाग लिया है और बसकी ख्याति भी बढ़ाभी है। परन्तु साथ ही यह न भूलना चाहिये कि दीवारकी शोभा रंगसे बढ़ती है तो भी दीवार ही रंगका आश्रय है और दीवारके बिना रंगको स्थान ही नहीं मिल सकता। विसी तरह सम्यताके आधार-स्तंभ प्रतिष्ठित माने हुये बंधे नहीं, परन्तु पढ़ी या वेपढ़ी गृहिणियों, भृत्यों, कृपकों और कारीगरोंके बंधे हैं। जिन बंधोंको अप्रतिष्ठित कहना अथवा समझना या उनके प्रति अनादर रखना, उन्हें करनेमें शर्म आना और उन्हें अच्छी तरह करनेके अुपाय खोजनेमें रस न लेना विद्वत्ताका लक्षण भले ही हो परन्तु सम्यताका नहीं; और लोक-सेवकोंके अनेक कर्तव्योंमें एक यह भी समझना चाहिये कि वे स्वयं जिन कामोंमें भाग लेकर जिनकी प्रतिष्ठा बढ़ायें और जिन्हें करनेकी पद्धतियोंमें संशोधन करें। गांधीजी जिसे शरीर-श्रम (श्रमयज्ञ, ब्रेड लेबर) का सिद्धान्त कहते हैं, वह यही है।

हरिजनबन्धु, ३-२-'३५

## ६

### बंधेका निश्चय

#### १

अपने गुजरातके दौरेमें सरकारी या राष्ट्रीय, हरिजन अथवा हरिजनेतर, जिन जिन शालाओं या छात्रालयोंमें मुझे बोलनेका मौका मिला, वहां मैं जो एक प्रश्न सबसे पूछता था वह यह है : 'तुम बड़े होकर कौनसा बंधा करके अपना गुजारा करोगे, यह तुमने तय कर लिया है?' वेशक, कोसी दर्जनभर तरुण या लड़के मुश्किलसे जैसे मिले, जिन्होंने अपना भावी बंधा निश्चित कर रखा था। कॉलेजके विद्यार्थी भी अधिकतर यह नहीं जानते थे कि वे ग्रेज्युअेट होनेके बाद निश्चित रूपसे कौनसा बंधा करेंगे। विनय-मंदिरोंके विद्यार्थियोंमें से अधिकांशको यह सवाल सुनकर अुलटा आश्चर्य हुआ। ऐसा प्रश्न विनय-मंदिरकी भूमिकामें पूछा ही कैसे जा सकता है? कुमार-मंदिरके विद्यार्थियोंको

जब मैंने यह प्रश्न पूछा तब तो शिक्षकोंको भी आश्चर्य हुआ; और जब मैंने बाल-मंदिरोंके शिक्षकोंके सामने यह बात रखी कि प्रत्येक बालकको बड़ा होकर जीविकाके लिये क्या धंधा करना है, जिसका निश्चय आपके बालकोंसे बाल-मंदिरमें ही करा लीजिये, तब अन्हें कैसा लगा होगा यह मैं नहीं जानता।

प्रवाससे लौटनेके बाद अेक शिक्षककी तरफसे मिले पत्रमें से नीचेका भाग अुद्धृत करता हूं :

“आप छुटपनसे ही जिस बातका विचार करनेकी सलाह देते हैं कि बालकको बड़ा होकर किस धंधेमें जाना है। परन्तु क्या छोटी अुम्रमें यह तय करने लायक समझ बालकोंमें आ जाती है? जिस अुम्रमें दुनिया देखी न हो, अपनी अभिलषि या कुशल-ताका पता न हो, अुस अुम्रमें अैसा प्रश्न निश्चित ही कैसे हो सकता है? मुझे तो लगता है कि विनीत होने तक बालक साधारण शिक्षा लें, हाथ-पैर हिलाना सीखें, भिन्न भिन्न धंधोंके बारेमें जानें, और बादमें वे अपना मार्ग निश्चित करें। अुद्योगोंमें बढ़जी, लुहार और दरजीका काम थोड़ा-थोड़ा सीखा हो, तो अुन परसे वे अपना मार्ग निश्चित कर सकते हैं। जिसमें विचारदोष या दृष्टिदोष हो तो बताविये और अपनी दृष्टि अधिक नमजाविये।”

जिस भागको पूरा करनेका प्रयत्न करता हूं।

हमारे देशमें शिक्षाका अंग्रेजी काल आरंभ हुआ अुनसे पहले जिस बारेमें परेशानी पैदा नहीं होती थी कि लड़का बड़ा होकर क्या धंधा करेगा। जैसे हिन्दू हो तो चोटी रखनी ही चाहिये और मुसलमान हो तो मुन्नत करानी ही चाहिये, यह चीज शंका अुठाये बिना बालक स्वीकार कर लेता था, वैसे ही वह निःशंक होकर यह मान लेता था कि बड़ा होने पर अुसे माता-पिताका धंधा ही करना है। वेदान्तका अध्ययन करे, भक्त बने, कविता रचे, बड़ी बड़ी हवेलियां बनवाये, पुल गढ़े करे, रास्ते बनाये, चित्र खींचे, अपने धंधेमें कम प्रवीण हो या ज्यादा, थोड़ा यशस्वी हो या बहुत, फिर भी दरजीका लड़का जियेगा तब तक लियेगा

तो जरूर और बनियेका घेडा किसी प्रकारके पैतृक व्यापार-व्यवसायमें ही रहेगा। जिस प्रकार रोजगार-धन्वेके मामलेमें किसी प्रकारकी अनिश्चितता नहीं थी। गांधीजीकी भाषामें कहें तो 'वर्ण-व्यवस्था कायम थी'।

शिक्षाके अंग्रेजी कालमें यह स्थिति बदल गयी। जिसका कारण कुछ हद तक अंग्रेजी राज्य द्वारा युत्पन्न की हुयी शिक्षा-प्रणाली है, कुछ हद तक अंग्रेजी राज्य द्वारा निर्माण किये हुये नये धंधे हैं, और कुछ हद तक यंत्रयुगके कारण जगतके बुद्योग-धंधों और आर्थिक व्यवहारोंमें हुयी भारी क्रान्ति है।

अंग्रेजी कालसे पहलेकी शिक्षामें परम्परागत धंधोंकी शिक्षाकी व्यवस्था जरूर रही होगी, परन्तु संभव है व्यवस्थित ढंगसे साधारण शिक्षा देनेकी कोसी ठीक योजना न रही हो। यह अेक दोष था। यह दोष अंग्रेजी राज्यको खटका। उसे राज्यके अलग-अलग विभाग चलानेके लिये जिन जिन लोगोंकी जरूरत थी — नौकरीमें या स्वतंत्र धंधेवालोंके रूपमें — उन्हें साधारण शिक्षाके अभावमें जुटानेमें कठिनावियां मालूम हुयीं। जिसलिये उसने जो शिक्षा-प्रणाली तैयार की, वह पहले केवल साधारण शिक्षा देनेवाली और बादमें विभागोंका धंधा सिखानेवाली ही तैयार की। साधारण शिक्षाका अभाव हमारे प्राचीन जीवनका दोष था; और यह दोष अंग्रेजों द्वारा खड़ी की गयी शिक्षा-संस्थाओंमें पड़े हुओं और उनमें न पड़े हुओंके बीचका भेद दिखायी देने पर लोगोंके ध्यानमें आ गया। जिसलिये जिस शिक्षाके प्रति लोगोंमें दिनोंदिन आकर्षण बढ़ता गया। यहां तक कि जिस शिक्षाके अन्य दोषोंकी ओर जब लोकनायकोंका ध्यान आकर्षित हुआ और वे राष्ट्रीय शिक्षाकी योजनायें सोचने लगे, तब भी जिसकी चिन्ता कभी दूर नहीं हुयी कि सामान्य शिक्षामें कोसी कमी न आने पाये। खुलटे, अैसी योजनायें सोची गयीं कि सरकारी शिक्षाकी कमी विशेष प्रकारकी सामान्य शिक्षासे ही पूरी की जाय। अंग्रेजीके वजाय मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना, हिन्दीकी राष्ट्रभाषाके रूपमें स्थापना करना, इतिहासका संशोधन करके उसे जिस ढंगसे सिखाना कि वह राष्ट्रीय भावनाका पोषक बने, मातृभाषाका विकास करना, और थोड़े वर्षोंमें अधिक पढ़ाई कराना — आदि आदि राष्ट्रीय शिक्षाके ध्येय

वने। जिस सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षाका सादा नाम 'साधारण शिक्षा' है। जिसका रोचक नाम है 'संस्कारिताकी शिक्षा'।

परन्तु जितने समय तक बालक या किशोर साधारण शिक्षा पाता हो, अतने समयमें उसे अपने पैतृक धंधे या जीविका देनेवाले किसी अन्य धंधेकी शिक्षा किस तरह मिले, जिसका विचार करना किसीको नहीं मूझा था। दोष तो धंधोंकी शिक्षामें भी आ गया था। अेक या अनेक कारणोंसे धंधे नष्ट होते जा रहे थे, कलाओं नाशको प्राप्त हो रही थीं और जनतामें अज्ञान बढ़ता जा रहा था। अुसमें भी प्रवाह सामान्य शिक्षाकी ओर ही मुड़ा। जिसलिअे धंधोंका जो थोड़ा-बहुत ज्ञान परम्परासे चला आ रहा था, अुसे भी लोग भूलने लगे; और कुछ तो विलकुल स्मृतिका विषय ही बनकर रह गया। परिणाम यह हुआ कि आज हम यह मानने लगे हैं कि बीस वर्षकी अुन्नसे पहले धंधा तय करना संभव ही नहीं है। जीवनमें बीस वर्ष — कमसे कम पंद्रह वर्ष तो जरूर — सामान्य शिक्षा पानेके लिअे होने चाहिये। नतीजा यह हुआ कि बाप किसान होगा और अुसके लड़कोंमें से अेक वकील, अेक डॉक्टर, अेक बिजीनियर, अेक व्यापारी, अेक आवकारीका दारोगा, अेक रसायनशास्त्री, अेक पाठ-शालाका शिक्षक और अेक सम्पादक या लेखक होगा; और अुनके लड़कोंमें भी अैसी ही विविधता हो सकती है।

जिस परिणामको लानेमें सरकारी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा, सनातनी और सुवारक, हिन्दू तथा मुसलमान — सभीने समान रूपमें हाथ बंटाया। किसीने रुकावट तो डाली ही नहीं। वर्ण अर्थात् धंधा — गांधीजीका यह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय, तो सबने मिलकर समाजमें पूरी तरह वर्ण-संकरता और अव्यवस्था स्थापित कर दी। जन्मसे किनोका वर्ण तय नहीं होता; अितना ही नहीं, आदमी बीस-चाबीस वर्षका हो जाय, कदाचित् अेक-दो वच्चोंका बाप हो जाय, तो भी वह नहीं जानता कि अुसका वर्ण क्या है अथवा क्या होगा। जिसे अपना ही वर्ण जाननेकी कठिनाजी हो, वह बालकको भला कौनसे धंधेके आनुवंशिक मंस्त्रार देगा ?

यह है हमारी आजकी स्थिति। जिससे बाहर निकलनेकी जरूरत है। केवल आर्थिक दुर्दशाका हल ढूंढनेके लिअे ही नहीं, यद्यपि यह

कारण भी कोजी तुच्छ या गौण समझने जैसा नहीं है, परन्तु लोगोंके बौद्धिक और चारित्रिक विकासके लिये भी। मनुष्य बी० अ० और अम० अ० तक पढ़ाओ करे, पूर्ण तारुण्यमें आ चुका हो, तो भी यह न जान सके कि वह जीवनमें कौनसा धंधा कर सकता है, किस धंधेके अनुकूल उसका शरीर और मन है, तो यह कैसी विषम और दया-जनक स्थिति है! यह भी संभव है कि वह कोजी धंधा जानता हो, परन्तु आर्थिक परिस्थिति उसे बेकार रखती हो। परन्तु वह कुछ भी करनेके लिये तैयार ही न हुआ हो और किसकी तैयारी करनी चाहिये इसीकी परेशानी उसे बीसवें वर्षमें भी रहे, तो यह केवल आर्थिक दुर्भाग्य ही नहीं, परन्तु मानसिक और नैतिक दुर्भाग्य भी है।

जिसका अर्थ ही अुपाय है। गांधीजीके शब्दोंमें वह यह है कि वर्ण-व्यवस्थाको हम फिर उसके शुद्ध स्वरूपमें स्थापित करें। व्यवहारकी भाषामें जिसका अर्थ यह है कि कमसे कम अुम्रमें हम प्रत्येक बालकको यह निश्चय करा दें कि 'तुझे बड़ा होकर अमुक प्रकारके धंधेमें लगना है। तू कुटुम्बकी या अपनी शक्ति, अुमंग, परिश्रम और बुद्धिके अनुसार कितनी ही साधारण अर्थात् संस्कारिताकी शिक्षा प्राप्त कर, तुझसे हो सकें अुतने कला-कौशल संपादन कर, परन्तु यह न भूलना कि तुझे अमुक धंधा करना है और उसके लिये तुझे छुटपनसे तैयारी करनी चाहिये। जिस धंधेमें तुझे अपना पुरुषार्थ और भाग्य साथ दे तो तू अूंजीसे अूंजी ध्रेणी पर चढ़ना; वे साथ न दें तो सामान्य कक्षामें रहना। परन्तु यह निश्चय रखना कि तुझे धंधा तो यही करना है।'

यह निश्चय करनेमें माता-पिता तथा शिक्षक बालकके आनुवंशिक संस्कार, स्वभाव, जन्मजात सिद्धियां, श्रमप्राप्त सिद्धियां, माता-पिताकी आर्थिक शक्ति वगैराका जरूर विचार कर लें। परन्तु यह विचार करनेमें वर्षोंका समय न लगना चाहिये। जितना जल्दी निश्चय कराया जा सके अुतना अच्छा। और, जिसमें आम तौर पर कौटुम्बिक धंधेको पसंद करनेका रुख होना चाहिये। अपवादरूपमें ही बालकको माता-पितासे भिन्न प्रकारके धंधेमें पढ़नेका अवसर पैदा होना चाहिये।

आजके समयमें भले ही अठारह नहीं, अठारह सौ प्रकारके घंधे हो गये हैं और अनुमें दिनोंदिन वृद्धि होती ही जा रही है, फिर भी जिन सब घंधोंकी जांच करें तो संभव है सारे घंधोंको आठ-दस गोत्रोंमें बांटा जा सकता है। जुदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि बड़ली, लुहार, राज, टनर, फिटर, रिपेयर, सिविल इंजीनियर, मेकेनिकल इंजीनियर, विजलीका इंजीनियर, विमानका इंजीनियर, अंजिन बनाने-वाला वगैरा लोगोंका गोत्र अेक ही है। हम जिन्हें मिस्त्री अथवा कारीगरके रूपमें जानते हैं। जिनमें से भले ही कोजी आठ आने रोज कमानेवाला हो, और कोजी अस्सी रुपये लानेवाला हो। यहां हम जिसमें जो अन्याय हो उसे मिटानेका विचार नहीं कर रहे हैं। घंधेका प्रारंभिक निश्चय करानेका अर्थ है कम-से-कम बालकके घंधेके गोत्रका निश्चय कराना। फिर वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता जायगा, त्यों-त्यों उसकी शाखाओं और उपशाखाओंका निर्णय होता जायगा।

जिस प्रकार यदि बालक अपने भावी घंधेके बारेमें निश्चित हो जाय, तो जिससे केवल सुत्तीको सीधा मार्ग ढूँढ़नेमें सहायता नहीं होगी, परन्तु हमारी शिक्षा-प्रवृत्तियां भी अधिक निश्चित मार्ग ग्रहण करेंगी। साधारण शिक्षा भी सब मनुष्योंके लिये साधारण संस्कारोंकी ही शिक्षा नहीं होती। अेक खास मर्यादाके बाद वकीलके घंधेके लिये तैयार होनेवालेकी सामान्य शिक्षा अेक प्रकारकी होगी, डॉक्टरके लिये दूसरी तरहकी होगी; किसानोंकी शालामें सामान्य शिक्षाकी अेक दृष्टि होगी और मजदूरोंकी शालामें दूसरी होगी। जिस प्रकार जिस गोत्रके घंधेके लिये शाला होगी, उसकी सामान्य शिक्षामें भी विलकुल आरंभसे ही कुछ न कुछ विशेषता होगी।

अर्थात्, जिसमें यह सूचना भी है कि केवल सामान्य शिक्षा — संस्कारिता — की शाला द्रुष्टिपूर्ण संस्था है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि जैसे-जैसे विद्यार्थी बड़ा होता है वैसे-वैसे कौनसा घंधा किया जाय जिसके विषयमें वह केवल संशयात्मा ही नहीं बनता, बल्कि वापदादेका

धंवा भी विलकुल भूल जाता है और उसकी व्यापक शिक्षा उसके पैतृक धंधेके विकासके लिये उपयोगी सिद्ध होनेके बजाय अलट्टे उस धंधेके लिये उसे अयोग्य ही बनाती है।

धंधेका निश्चय और उसकी शिक्षाकी वचनसे ही व्यवस्था होनेके सिवा प्रत्येक बालकके लिये अेक अितर अुद्योग — अतिरिक्त धंधे — की भी जरूरत मानी जायगी। अितर अुद्योगमें दो लक्षण होने चाहिये : मुख्य धंधेके साथ आरामके समय रूपयेके लिये नहीं, परन्तु केवल शौकके तौर पर भी वह प्रिय लगे। आवश्यकता पड़ने पर, अथवा ऐसी अनुकूलता मिल जाने पर, उसे रोजी देनेवाला भी बनाया जा सके। जिसके अलावा, कभी कभी अेक तीसरा लक्षण भी उसका हो सकता है। वह यह कि उसका ज्ञान मुख्य धंधेको अलंकृत — कलामय — बनानेमें उपयोगी हो। जिस अितर अुद्योगके चुनावमें बालकके व्यक्तित्वको — उसके मनको अनुकूल लगनेवाली प्रवृत्ति ढूंढनेका पूरा अवकाश रहता है। (अर्थात् मैं यहां अितर अुद्योगके तौर पर सहायक अुद्योग अर्थात् कातने-पीजने जैसे अेक धंधेके साथ चलनेवाले दूसरे धंधेका विचार नहीं कर रहा हूं। उसका समावेश तो मुख्य अुद्योगमें ही होगा।)

प्रत्येक मनुष्य अपने मनके अनुकूल प्रवृत्तिमें ही रातदिन लगा रह सके और उसके द्वारा अपनी आजीविका भी कमा सके तो कितना अच्छा हो ! परन्तु जिस प्रकारके संसारमें हम रहते हैं, उसमें ऐसी अनुकूलता सबको प्राप्त नहीं होती; बहुत कम लोगोंको प्राप्त होती है। जिसलिये अुदास होने, निराश होने और बड़बड़ाहट करनेसे कुछ नहीं होगा। इसीलिये धर्म मनोनुकूल प्रवृत्तियोंका मार्ग नहीं माना गया, परन्तु कर्तव्यका मार्ग माना गया है। अतः मनोनुकूलताकी अपेक्षा कर्तव्यको हम पहला आदर देना सीखें — यह पहला धर्म है। और मनोनुकूल प्रवृत्तियोंको आजीविकाके लिये नहीं परन्तु शौकके लिये, निवृत्तिके लिये, वैयक्तिक विकासके लिये रखें — यह दूसरा धर्म है।

# शिक्षाका विकास

दूसरा भाग

सेवाग्राम





## शिक्षा और श्रम

शिक्षामें बुद्योगका स्थान अवश्य होना चाहिये, जिस वारेमें अब शिक्षाशास्त्रियोंमें शायद ही कोजी मतभेद है। परन्तु अस्त दिशामें आगे कैसे बढ़ा जाय, यह अभी तक बहुत स्पष्ट नहीं हुआ है। 'बुद्योग द्वारा शिक्षा' का अेक अर्थ मैं यहां पेश करता हूं।

मैं मानता हूं कि प्रत्येक शालाके साथ बुद्योग-विभाग होना चाहिये; और जिसके विपरीत प्रत्येक बुद्योग-संस्थाके साथ अुसमें काम करनेवालोंके लिजे शालाकी योजना होनी चाहिये। बालक शालामें पढ़ें और अुसके बुद्योग-विभागमें काम करें और बुद्योग भी सीखें। बड़े लोग बुद्योग करें और साथ ही बुद्योग-संस्थाओंकी शालाओंमें पढ़ें। जिस प्रकार अेकके साथ दूसरी संस्था होनी चाहिये।

दुनियामें मनुष्य-जातिके बड़े भागको मेहनत-मशक्कतका कठिन जीवन बिताना पड़ता है; किसी न किसी प्रकारका स्नायुश्रमवाला बुद्योग करके ही निर्वाह करना पड़ता है। और जिन्हें अैसा नहीं करना पड़ता अुनके भी विकासके लिजे अुनकी स्नायुश्रमवाले अर्थात् मेहनतके काम करनेकी शक्तिका विकास करनेकी जरूरत है। जिसलिजे शालाओंकी योजना जिस ढंगसे होनी चाहिये कि अुनका पाठ्यक्रम पूरा करनेवाला युवक अथवा युवती मजदूरी (स्नायुश्रम) करनेकी शारीरिक, माननिक और बौद्धिक योग्यता रखे। बड़ी अुम्रमें अैसा श्रमपूर्ण बुद्योग न करना पड़े और जिसलिजे वह न करे तो कोजी हर्ज नहीं। परन्तु यह नहीं होना चाहिये कि जरूरत पड़ने पर भी अपनी शिदाके कारण (वर्त्तिक शिदाकी न्यूनताके कारण) वह अैसा बुद्योग करनेके लिजे शरीरसे, मनसे या बुद्धिसे अयोग्य साबित हो।

स्नायुश्रम करानेवाली मजदूरीके तीन वर्ग किये जा सकते हैं :

१. जिन कामोंमें यंत्रवत् अेक ही तरहका (monotonous) स्नायुश्रम करना हो, अैसे जड़ मजदूरीवाले काम।

२. जिन कामोंमें ध्यानपूर्वक, थोड़ी-बहुत तालीमके साथ तथा विविध प्रकारका स्नायुश्रम करना हो, जैसे कारीगरी अथवा कुशल मजदूरीवाले काम।

३. जिन कामोंमें हिसाबके साथ, शास्त्रज्ञानपूर्वक स्नायु-श्रम करना हो, जैसे मिस्त्रीगिरी या इंजीनियरीके काम।

मनुष्योंमें मेहनत-मजदूरीके लिये जो अरुचि बढ़ गयी है, उसके फलस्वरूप जैसे मजदूरीके कामोंकी अपेक्षा बैठकके अथवा बुद्धिके कामोंके लिये अधिक मोह होता है, वैसे ही मजदूरीके धंधोंमें भी अपरके विभागोंमें अकेसे दूसरेकी कीमत ज्यादा समझी जाती है।

परन्तु मानव-जीवनका विचार करने पर जान पड़ता है कि केवल जड़ परिश्रमके काम किये बिना जीवन-निर्वाह ही नहीं सकता। अरुचिसे करो, भ्रमंगके साथ करो या कर्तव्यबुद्धिसे हर्ष-शोक-रहित होकर करो, वे करने तो पड़ते ही हैं। अलट्टे जैसे-जैसे यंत्रोंमें सुधार होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे कुशलतावाले कामोंके लिये भी यंत्र बनाये जा रहे हैं, और वे केवल जड़ मजदूरीके काम बनते जा रहे हैं। मतलब यह है कि बुद्योगोंकी क्रियाओं यंत्रोंसे हों या हाथसे, परन्तु जड़ स्नायुश्रमसे सबको मुक्ति मिलना संभव नहीं। जिसलिये ऐसे कामोंके प्रति मनमें अरुचि बढ़ाना, उन्हें करनेकी आदत छोड़ देना तथा उन्हें करनेमें असमर्थ होना मानव-जीवनको टिकाये रखनेकी एक अनिवार्य शर्त न पालनेके बराबर है। जिससे मानव-जीवनको सजा मिले बिना रह ही नहीं सकती। जो जिससे भागते हैं उनका स्नायु-विकास कम होता है और अंनमें पीढ़ी दर पीढ़ी अपंगता आती जाती है। जिसमें दोनों तरहसे हानि ही होती है। जिस बातका प्रमाण हमारे पीढ़ी दर पीढ़ी बैठकके काम करनेवालों और 'पढ़े-लिखों' के शरीर देते हैं।

जिसलिये मेरी दृष्टिमें बुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ यह है कि केवल मजदूरीके एक ही तरहके और श्रमपूर्ण कामोंके लिये शरीरकी शक्ति बढ़ायी जाय और कायम रखी जाय तथा ऐसे कामोंके प्रति अरुचि उत्पन्न करनेवाले संस्कारों और परिस्थितियोंको मिटाया जाय। जिसके

लिजे विद्यार्थियोंको ऐसे कामोंमें भी लगाना चाहिये, जिनसे उन्हें जड़ श्रम करनेकी आदत रहे।

बिनाका अर्थ यह नहीं कि कारीगरी और इंजीनियरीकी शिक्षाको गौण स्थान देना है। ऐसा किया जाय तो स्नायुश्रमवाले बुद्योग करनेकी बौद्धिक योग्यता नहीं बढ़ेगी। और यह भी समाजके लिजे हानिकारक ही होगा।

बिना प्रकार शालाओंकी योजना ऐसी होनी चाहिये, जिसमें विद्यार्थी काफी जड़ मजदूरी करते हों, कारीगरी सीखते हों और साथ ही पाठ भी पढ़ते हों। इन संस्थाओंके उच्च पाठ्यक्रममें इंजीनियरीकी शिक्षा आ जायगी।

ऐसे उच्च पाठ्यक्रमके लिजे विशेष शालाओंकी अपेक्षा बुद्योग-संस्थाएँ भिन्न भिन्न धंधोंके अधिक सुविधापूर्ण स्थान हो सकती हैं। यह सिद्धान्तकी अपेक्षा सुविधा और किफायतका विषय है।

परन्तु औद्योगिक शिक्षाके एक दो आवश्यक लक्षणोंके प्रति ध्यान रखनेकी जरूरत है।

एक तो 'बुद्योग' को बिल्कुल गुरुसे अनुके शुद्ध अर्थमें ही समझना चाहिये। अर्थात् छोटी या बड़ी जो भी वस्तु बालक बनाये, वह जीवनमें किसी न किसी उपयोगमें आनेवाली वस्तु हो या अनुका कोजी भाग हो। खिलौना हो तो भी सच्चा खिलौना हो, केवल बनानेवाले बालकके विनोदके लिजे बनाया हुआ न हो। वह जो कुछ बना रहा है अनुका कुछ न कुछ उपयोग होगा, बिना ज्ञानके साथ बालककी अनुमें प्रवृत्ति और योजना होनी चाहिये। तभी यह कहा जा सकता है कि बालक 'बुद्योग' करता है।

दूसरे, व्यायाम वगैरा शारीरिक शिक्षाको बुद्योगके अर्थमें रखनेमें काम नहीं चलेगा। व्यायाम, खेलकूद, कवायद वगैराका क्षेत्र और प्रयोजन स्वतंत्र है। वे आवश्यक हैं, परन्तु वे औद्योगिक शरीर-श्रमकी जगह नहीं ले सकते।

गांधीजीका सुझाव है कि इन शालाओंका खर्च अनुके विद्यार्थियोंके बुद्योगसे ही निकालना चाहिये। ऐसा न हो सके तो अन्य दो सूचनाएँ

ये हैं कि विद्यार्थियोंका अपना खर्च धुनकी मेहनतसे निकलना चाहिये अथवा कम-से-कम शालाओंका बुद्योग-विभाग स्वावलंबी होना चाहिये। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि ऐसी अेकाध शर्तका पालन करके ही शालाकी योजना करनेका मार्ग मुझे अभी तक स्पष्ट दिखायी नहीं देता। अितना कहा जा सकता है कि वर्तमान जन-मानस और गरीबीकी दृष्टिसे विद्यार्थीके धर्मका मेहनताना फीसके खातेमें जमा होनेकी अपेक्षा अुसे कमायीके रूपमें मिलनेकी व्यवस्था करना अिन तीनोंमें सबसे अधिक संतोष-जनक और परिणामकारक होगा। परन्तु साथ ही जिस विद्याकी कीमत न चुकानी पड़ती हो वह बहुत सफल नहीं होती। असलिये मैं बीचका मार्ग सुझाता हूं : विद्यार्थियोंकी मजदूरीका अेक हिस्सा फीस माना जाय और बाकीका धुनकी कमायी।

बुद्योगसे शालाका सारा खर्च निकले या न निकले, यह मुख्य प्रश्न नहीं है। क्योंकि किसी भी हालतमें हमें शिक्षाका प्रचार तो करना ही चाहिये। अिसके लिये दूसरे विभागोंसे अेक अेक पायी वचानेको हम तैयार होंगे। शिक्षाके खर्चके प्रति हमें भविष्यमें आय देनेवाली पूंजीकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। अब तक तो केवल पुस्तकीय शिक्षाके खर्चको भी हम अच्छी पूंजी समझते आये हैं। तो फिर औद्योगिक शिक्षाकी तो हमें अधिक अूंजी कीमत समझनी चाहिये।

असल प्रश्न खर्चका नहीं, परन्तु कुशल शिक्षाका है। गांधीजी कहते हैं कि कुशलता सिर्फ शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि अर्थशास्त्रकी और शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे भी होनी चाहिये। अिसमें दोष निकालने जैसी कोयी बात दिखायी नहीं देती। कुछ व्यक्तिगत शालाओंको हम आर्थिक दृष्टिसे कुशल न बना सकें, फिर भी यदि अिस बात पर हमारा ध्यान रहेगा तो हम कम-से-कम नुकसानको कम करनेमें तथा अमुक प्रकारकी शालाओंको स्वावलंबी बनानेमें तो सफल हो ही सकेंगे। और यह भी न हो तो अिससे हमारे साधन बढ़ेंगे, घटेंगे नहीं। शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे निकम्मी शिक्षासे संतोष मान लेना गांधीजीके स्वभावमें नहीं है; और यदि मान लिया जाय कि आर्थिक लाभ पर बहुत नजर रखनेसे शिक्षामें निकम्मापन आ रहा है, तो वे अैसे लाभको

छोड़नेमें डरनेवाले नहीं हैं। यह तो हम जानते हैं कि कत्तिनोंकी मजदूरीकी दरोंसे असंतुष्ट होकर उसे बढ़ानेमें और जिस तरह महंगी खादीको और महंगी करके चरखा-संघको जोखिममें डालनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ !

जिसलिअे, जिस समस्याका हल ढूँढनेका मार्ग हमारी विचार-शक्तिको यह बतानेकी दिशामें मोड़ना नहीं है कि किस प्रकार गांधीजीकी दलीलोंका खंडन किया जाय और गांधीजी जो चाहते हैं वह असंभव है; परन्तु यह बतानेकी दिशामें उसे मोड़ना है कि हम उनकी कल्पनाको किस प्रकार अधिकसे अधिक सफल बना सकते हैं।

हरिजनबन्धु, २४-१०-'३७

## २

### वर्धा-पद्धति \*

१. पूज्य गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षाकी योजनाको जिस लेखमें 'वर्धा-पद्धति' कहा गया है।

२. यह योजना बताती है कि एक बालकको आगे चलकर मनुष्य-परिवारमें एक जिम्मेवार कुटुम्बी जनका स्थान लेने लायक बनानेके लिये हम किस प्रकार अहिंसाका प्रयोग कर सकते हैं।

३. जिस योजनाके संबंधमें व्यापक रूपसे यह दावा किया गया है कि यदि हमें मानव-समाजमें खूनी और लड़ाकू वृत्तिके स्थान पर शान्ति-स्थापक वृत्ति निर्माण करनी है, तो आवश्यक फेरफारोंके साथ यह तमाम देशोंमें और सभी जातियोंमें काम दे सकती है। हिन्दु-स्तानके लिये तो आज यही एक योग्य पद्धति है।

४. जिस पद्धतिका ध्येय यह है कि बच्चेके अन्दर भले-बुरेका खयाल पैदा होते ही उसे सामाजिक जीवनके कर्तव्योंमें भाग लेना शुरू करा देना चाहिये।

\* जिस लेखको पहले 'सेगांव-पद्धति' शीर्षक दिया गया था, परन्तु अब 'वर्धा-पद्धति' नाम रूढ़ हो जानेसे शीर्षक बदल दिया गया है।

५. जिस पद्धतिका मध्यविन्दु होगा कोजी उत्पादक पेशा। आम तौर पर हर किस्मकी शिक्षा जिस बुद्योगके जरिये और जिसके साथ गूँथ दी जानी चाहिये। बुदाहरणार्थ, इतिहास, भूगोल, गणित, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र एवं साहित्य आदि सब विषयोंकी शिक्षा जिस बुद्योगके साथ ग्रथित करके जिसके साथ-साथ दी जाय। विन विषयोंकी अन्य बातें छोड़ी नहीं जायंगी। पर ग्रथित शिक्षा पर अधिक जोर दिया जायगा।

६. बुद्योग भी शिक्षाका केवल साधन या वाहन नहीं होगा। बल्कि जिस हद तक वह मानव-जीवनमें अनिवार्यतः आवश्यक है, उस हद तक वह हमारी शिक्षाका साध्य भी होगा। अर्थात् जिस शिक्षाका एक ध्येय यह भी होगा कि जिसके द्वारा हर तरहके शरीर-श्रमके प्रति, चाहे वह भंगीका ही काम क्यों न हो, बालकमें आदर-भाव उत्पन्न हो; और एक अंती कर्तव्य-निष्ठा उत्पन्न हो कि उसे अपनी रोजी आमानदारीके साथ शरीर-श्रम करके ही प्राप्त करनी चाहिये।

७. जिस पद्धतिके अनुसार पढ़ानेवाले शिक्षकका लक्ष्य यह होगा कि विद्यार्थी जो भी बुद्योग सीखे उसीके जरिये उसकी तमाम शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ प्रकट हों।

८. जिसमें समाज-शास्त्र तथा आरोग्य-शास्त्र केवल शिक्षण-वर्गके विषयोंके रूपमें ही न पढ़ाये जायं, बल्कि मूक प्राणियों सहित सारे गांवकी भिन्न-भिन्न रीतिसे सेवा करनेके लिये सामाजिक तथा व्यक्तिगत कार्यक्रम बनाकर उनके द्वारा विन विषयोंकी प्रत्यक्ष शिक्षा दी जाय। जिस नवीन विद्यालयकी हस्ती एक दीपस्तंभकी तरह हो, जो समाज पर चारों तरफसे संस्कृतिका प्रकाश फैलाता रहे।

९. संक्षेपमें कहें तो “हाथ और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा यह पद्धति व्यक्तिकी बुद्धि और हृदयको सुसंस्कृत करे और विद्यालयके जरिये उसे समाज तथा परमात्मा तक पहुँचावे।”

१०. शालाके सामुदायिक जीवनमें रहकर रोज तीन या चार घंटे तक सह-परिश्रम करना लड़के-लड़कियोंके लिये आरोग्यदायक और उत्तम रीतिसे शिक्षाप्रद भी है। “मनुष्य चाहे किसी भी श्रेणीका हो, विज्ञान

तथा बुद्योगके विकासके लिये और सारे समाजके सामूहिक लाभकी दृष्टिसे भी उसे वैसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वह विज्ञानकी पूरी शिक्षाके साथ-साथ दस्तकारीकी शिक्षाको जोड़ सके।" (क्रोपाटकिन)

११. मौजूदा शिक्षा-पद्धतिमें तो अधिकांश विद्यार्थी अपनी कॉलेजकी पढ़ाई खतम कर लेने पर भी यह निश्चय नहीं कर पाते कि अब आगे वे क्या काम करेंगे? हम अक्सर देखते हैं कि अंसे बहुतसे लड़के और लड़कियां, जिनके घरकी स्थिति बहुत ज्यादा खराब नहीं होती, प्राथमिक शालाओंसे माध्यमिक शालाओंमें और वहांसे कॉलेजोंमें भारी खर्च भुगतकर जाते रहते हैं। जिसका कारण यह नहीं बताया जा सकता कि वे जिन शाला-कॉलेजोंमें सिर्फ अनु शुभ संस्कारोंको पाने ही जाते हैं, जिनका कि ये संस्थाओं दावा करती हैं। वास्तवमें तो वे जिसलिसे पढ़ते चले जाते हैं कि उन्हें कुछ सूझता ही नहीं कि जिसके अलावा वे और क्या कर सकते हैं। आजीविका कमानेके लिये उपयुक्त धंधेके चुनावकी घड़ीको जहां तक बन पड़ता है वे आगे ढकेलते जाते हैं और अंके बाद अंके अन्तिहानोंमें बैठते चले जाते हैं। जिस स्त्री अथवा पुरुषको अपने जीवनके प्रारंभिक बीस-पच्चीस साल जिस तरह निरुद्देश्य बिताने पड़ते हैं, अंके अन्दर दीर्घसूत्रता, संशयवृत्ति, अनिश्चितता और अपने-आप किसी निर्णय पर पहुंचनेकी अक्षमता आये वगैरह ही नहीं सकती। वर्धा-पद्धतिका अद्देश्य यह है कि प्रत्येक बालक या बालिकाको वह जल्दी-से-जल्दी जिस बातका निर्णय करा दे कि उसे अपने भावी जीवनमें कौनसा व्यवसाय करना होगा, और उसे किसी अंके धंधेकी कम-से-कम जितनी तालीम भी जरूर दे दे, जिससे वह जीवनके योग्य धारण-भोषणके लिये आवश्यक न्यूनतम कमाई जरूर कर सके।

१२. साक्षरता — यानी लेखन-वाचन द्वारा अनेक विषयोंकी जानकारी तथा तार्किक अथवा अंसी ही अन्य चर्चाओंको समझनेकी शक्ति — को वर्धा-पद्धतिमें न तो ज्ञान माना गया है और न ज्ञानका साधन ही। बल्कि अंसे तो जिसे ज्ञान अथवा अलंकृत अज्ञानको प्रकट करनेकी नाकैतिक पद्धतिमात्र माना गया है। जिन संकेतोंका ज्ञान तो तब उपयोगी और

चि. वि-६



जरूरी हो सकता है जब ज्ञानकी जड़ें हरी हों। वर्वा-पद्धतिका बुद्देश्य यह है कि बिन जड़ोंको हरा-भरा रखा जाय। जिसके साधन हैं प्रत्यक्ष कार्य, अवलोकन, अनुभव, प्रयोग और सेवा। बिनके बगैर कोरी किताबी पढ़ाओ विद्यार्थीके हृदय और बुद्धिके विकासमें विघ्नरूप सिद्ध होती है और उसके शरीरको भी बिगाड़ती है।

१३. वर्वा-पद्धतिके अनुसार जो पढ़ाओ होगी उसमें विद्यार्थीको पढ़ाओकी बुनियादके रूपमें जो सिखाया जायगा, उसमें नीचे लिखे विषयोंका समावेश होना जरूरी है—मातृभाषाका अच्छा ज्ञान, मातृ-भाषाके साहित्यका साधारण परिचय, देशकी राष्ट्रभाषाका व्यावहारिक ज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र, आलेखन, संगीत, कवायद, खेल-व्यायाम वगैरा। बिन विषयोंका साधारण ज्ञान होना चाहिये और बिनके सिवा किसी अेक धंधेमें बितनी कुशलता भी होनी चाहिये, जो साधारण शक्तिवाले विद्यार्थीको मामूली कमाओ करनेकी शक्ति दे सके; और अगर वह होशियार तथा परिश्रमी भी हो तो उसे इस लायक बना दे कि वह साहित्यिक अथवा औद्योगिक क्षेत्रमें अधिक शिक्षा पानेका पात्र बन जाय। इस 'बुनियादी तालीम' में नीचे लिखे विषयोंका समावेश आवश्यक नहीं है—अंग्रेजी अथवा अैसे तमाम विषय जिनकी साधारणतया व्यवहारमें जरूरत नहीं होती, अथवा बुद्धिके विकासके लिये जो अनिवार्यतः आवश्यक नहीं होते, या खुद-ब-खुद अपनी शिक्षाको आगे बढ़ानेकी पूर्व-तैयारीके रूपमें जिनकी जरूरत नहीं होती।

१४. 'बुनियादी तालीम' का अध्ययन-क्रम सात वर्षसे कमका नहीं होना चाहिये। हां, अगर जरूरत हो तो समय बढ़ाया जरूर जा सकता है। अगर आगे लिखे अनुसार शालाओं स्वावलंबी हो सकीं, और विद्यार्थियोंके पालकोंको भी उनसे कुछ लाभ मिल सका, तो बच्चोंको अधिक समय तक पढ़ानेमें उनके पालकोंको कोओ कठिनाओ नहीं होगी।

१५. वर्वा-पद्धतिके संबंधमें राज्यके कर्तव्यों तथा जीवन-वेतनकी कम-से-कम मर्यादाके विषयमें कुछ सिद्धांत निश्चित कर लिये गये हैं। वे नीचे दिये जा रहे हैं।

१६. जो स्त्री या पुरुष मेहनत करनेके लिये तैयार हों और जिन्हें सरकार पढ़नेके लिये मजदूर करे, सरकारका कर्तव्य है कि उन्हें काम दे और जिस कामके बदलेमें कम-से-कम जितना वेतन तो जरूर दे, जिससे उनका ठीक तरहसे निर्वाह हो जाय। जिस सरकारमें जितना करनेकी शक्ति नहीं है, वह 'राज्य' कहलानेकी पात्रता नहीं रखती।

१७. असा अनुमान लगाया गया है कि आजकलके बाजार-भावोंके अनुसार हिन्दुस्तानमें योग्य निर्वाहके लिये पूरा काम करनेवाले आदमीका मेहनताना फी घंटा एक आनेसे कम नहीं पड़ना चाहिये। 'पूरा काम' से यहां बुतना काम समझा जाय, जितना कि (तालीम पाया हुआ) एक साधारण आदमी घंटेभरमें कर सके।

१८. हमारे देशकी वर्तमान शासन-पद्धति तथा समाजकी रचना भी जिस कसौटी पर खरी नहीं बुतरती। जिसलिये हमारे देशकी सरकारें 'राज्य' कहलानेकी पात्रता नहीं रखतीं। जिस खामीका कारण चाहे विदेशी सत्ता हो या खुद हम ही हों, उसे दूर करना ही पड़ेगा। वर्धा-पद्धतिका दावा है कि अगर भुस पर साहसपूर्वक और सच्चे दिलसे अमल किया जाय, तो राज्यमें तथा समाजमें आवश्यक फेरफार करनेके साधन और शक्ति वह हमें देगी।

१९. जिसके लिये राज्यको कम-से-कम एक बुद्योगको अपना लेना होगा; यह बुद्योग असा हो कि जिसमें वह लगभग असंख्य आदमियोंको काम दे सके और फिर भी उसे खुद घाटा न बुठाना पड़े।

२०. हिन्दुस्तानके लिये तो हाथ-कताभी और हाथ-बुनाई ही एक असा धंधा है। जिसमें कच्चा माल, थोड़ी पूंजीसे काम चल निकलना और अपार मनुष्य-बल आदि वे सारी स्वाभाविक अनुकूलताएँ हैं, जो अने देशका खास बुद्योग बना देनेके लिये आवश्यक हैं। फिर जिसके पीछे लंबी परंपरा भी तो है। क्योंकि सैकड़ों वर्षों तक हिन्दुस्तानने ही संसारको सूतसे ढंका है।

२१. यों तो पहले ही कातनेकी मजदूरी असंतोषकारक थी। पर आगे चलकर वह कलोंके बने मालकी प्रतिस्पर्धामें और भी अधिक घट

गयी। राज्य तथा जनताको चाहिये कि वे जिस प्रतिस्पर्धाको मिटा दें। और जब तक वे ऐसा नहीं कर सकते, खादी-अद्योगको जिलानेके लिये प्रतिस्पर्धाकी किसी प्रकारकी परवाह किये बगैर वे कातनेवालेको अितनी मजदूरी देना शुरू कर दें, जिससे उसका अच्छी तरह निर्वाह हो सके।

२२. जिसी तरह सभी प्रकारकी मजदूरीकी दर बढ़ानेकी जरूरत है, जिससे कि मजदूरोंका धारण-पोषण पूरी तरहसे हो सके। सरकारको चाहिये कि वह ऐसा करनेकी शक्ति प्राप्त करे। जनताका भी यह कर्तव्य है कि जिसमें सरकारकी मदद करे, जिससे कि वह जिस लायक बन जाय।

२३. ऊपर बताया हुआ अल्पतम मजदूरी बड़ी बुझके आदमीके लिये है। वर्षा-पद्धतिकी शालाके विद्यार्थीके लिये उसका दर फी घंटा आव आना पड़ता है।

२४. हम रोजाना कामके तीन घंटे मान लें और यह मान लें कि सालमें नौ महीने शाला लगेगी, तो वर्षा-पद्धतिकी शालाकी कुशलताकी कसौटी यह होगी कि सात दर्जों (हर दर्जमें २५ विद्यार्थी) और लगभग आठ-नौ शिक्षकोंवाली शालाकी आय अितनी हो जानी चाहिये कि अप्रयुक्त हिसाबसे अगर मजदूरी आंकी जाय, तो उसमें से शिक्षकोंका वेतन निकल आये। शिक्षकका वेतन कम-से-कम २५ रु० मासिक मान लिया गया है। (वह २० रु० मासिकसे कम तो किसी हालतमें न हो।)

२५. विद्यार्थियोंकी कार्यशक्ति, सावनों तथा शिक्षा-पद्धतिमें अितने सुधार हो जाने चाहिये कि कुशलताकी अप्रयुक्त कसौटी पर तो कम-से-कम प्रत्येक शाला खरी अुतर जाय।

२६. अप्रयुक्त दरसे शालाके विद्यार्थीकी मजदूरी आंकते हुअे तथा गांवोंमें खानगी कारीगरोंको आज जो मजदूरी मिलती है उसका विचार करते हुअे यह तो भय नहीं रहता कि खानगी कारीगरोंके मालके साथ शालाओंके मालकी प्रतिस्पर्धा होगी। गांवोंके कारीगरोंकी मजदूरीकी दरोंको जिस सीमा तक आनेमें जरा समय लगेगा और तब तक तो गांवोंके कारीगरोंकी कार्यशक्ति और सावनोंमें भी अितने ही सुधार हो चुके

होंगे। जिसलिसे यहां प्रतिस्पर्धाका भय रखनेकी कोभी जरूरत ही नहीं है।

२७. फिलहाल तो शालाको अपर्युक्त मजदूरी चुकानेका आश्वासन सरकारको दे ही देना चाहिये। कम-से-कम चरखा-संघ तथा ग्रामोद्योग-संघ द्वारा मंजूर की गयी दरें तो जरूर देनी चाहिये। और जब तक विद्यार्थीको फी घंटा आव आना मजदूरी नहीं पड़ जाती, ये संस्थाएँ ज्यों-ज्यों अपने यहां मजदूरीकी दरें बढ़ाती जायें त्यों-त्यों शालाओंकी मजदूरीकी दरें भी बढ़ती जानी चाहिये। जिस पर शायद यह आशेष किया जायगा कि यह तो शालाको प्रत्यक्ष रूपसे सहायता करनेकी बात हुयी। और उससे मौजूदा बाजार-भावोंको देखते हुये सरकार पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ पड़ेगा। मगर कारीगरोंकी कार्यशक्ति और साधनोंमें भी सुधारके लिये अतनी गुंजाबिश है कि हम यह आशा रख सकते हैं कि पदार्थोंकी कीमतें अधिक बढ़ाये वगैर भी पांच वर्षके अंदर शालाका तथा खानगी (तालीम पाया हुआ) प्रत्येक कारीगर हकके साथ जीवन-वेतनकी न्यूनतम मर्यादा तक पहुंचनेकी शक्ति प्राप्त कर लेगा।

२८. यह जो सिद्धान्त कहा गया है कि ऊपर बताये अर्थमें प्रत्येक शालाको स्वाश्रयी हो जाना चाहिये, उसमें केवल आर्थिक दृष्टि नहीं है। बल्कि जिसे शालाके औद्योगिक विभागकी कुशलताकी व्यावहारिक कसौटीके रूपमें रखा गया है।

२९. अभी तो खादी-उद्योग द्वारा 'यूनियादी तालीम' देनेकी दृष्टिसे वर्धा-पद्धतिका सांगोपांग विचार किया गया है। जिससे कोभी यह न समझ ले कि जिसमें हम अन्य उद्योगोंको प्रोत्साहन नहीं देना चाहते; बल्कि बात यह है कि दूसरे उद्योगोंके मंत्रधर्म योजना बनाने और अनुमान निकालनेके लिये अभी हमारे पास आवश्यक साधनगी नहीं है।

३०. वर्धा-पद्धतिके सिद्धान्त आवश्यक फेरफारोंके साथ उसके वाद्यों शिक्षामें भी लागू करने चाहिये। हर प्रकारकी शिक्षामें स्वाश्रयता को स्थान होना ही चाहिये। अच्छे शिक्षामें संस्थाका स्वर्च या तो विद्यार्थियोंकी मेहनतसे निकल आना चाहिये या बुनकी फीसमें। और अगर फीस न

देनी पड़ती हो, तो विद्यार्थी अपना खर्च शालामें या बाहर की गली मजदूरीसे निकाल लें।

हरिजनसेवक, ४-१२-३७

## ३

## दो संस्कृतियां \*

जो विचार मैं पेश कर रहा हूं, मुन्हें आप मेरे ही विचार मानें। यह न मान लें कि ये विचार तालीमी संघ या गांधीजीका मत भी अपु-  
स्तित करते ही हैं।

जो शिक्षा-पद्धति हमारे देशमें प्रचलित है, उस पर अनेक प्रकारके आक्षेप किये जाते हैं। ये आक्षेप आजसे नहीं, परन्तु वर्षोंसे होते रहे हैं। तो भी वह पद्धति अभी तक कायम है। और समझने लायक बात तो यह है कि आक्षेप करनेवाले हम लोगोंमें से अधिकतर उस पद्धतिका संचालन करनेवालोंमें से ही पैदा हुअे हैं तथा आक्षेप करने पर भी उसी पद्धतिको चलाते रहते हैं। जिसलिये हमें विचार करना चाहिये कि हम जिस शिक्षा पर आक्षेप क्यों करते हैं और जिसके बावजूद उसीको क्यों चला रहे हैं।

हम जिस शिक्षा पर आक्षेप करते हैं, जिसका अर्थ यह है कि जिसके द्वारा हमारी आवश्यकतायें अथवा हमारी आकांक्षायें अथवा दोनों अच्छी तरह पूरी नहीं होतीं। हम जितनी शिक्षाको कायम रखते हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि कुछ भी कहें तो भी जिसके द्वारा हमारी कुछ आवश्यकतायें अथवा आकांक्षायें अथवा दोनों पूरी होती हैं। जिन दोनों बातोंका हमें ध्यान रखना चाहिये और उनका रहस्य समझना चाहिये।

तो हमें जितना याद रखना चाहिये कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति भी एक विशेष प्रकारकी संस्कृतिकी प्रतिनिधि है। वह सर्वथा विदेशी है,

---

\* वर्गमें हिन्दुस्तानी तालीमी संघके तत्त्वावधानमें दिया गया एक भाषण।

यह कहना ठीक नहीं। मेरे मतानुसार जिस प्रकारकी शिक्षा-प्रणाली प्राचीन काशी (अथवा आजकी भी सनातनी काशी) और मुस्लिम कालमें हमारे देशमें प्रचलित थी, उससे आजकी शिक्षाका प्रकार भिन्न नहीं है। यह सही है कि जिन तीनों युगोंमें अलग अलग भाषाओंकी प्रतिष्ठा मिली है। एक कालमें संस्कृत भाषाकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक थी; बादमें फारसीकी, फिर हिन्दुस्तानीकी और फिर अंग्रेजी भाषाकी — जिस प्रकार एकके पश्चात् दूसरीकी प्रतिष्ठा बढ़ी। परंतु उनके द्वारा जिस संस्कृतिको पोषण मिला, वह तो एक ही रही है। वह संस्कृति उनकी है, जिन्हें हम भद्र लोग अथवा सफेदपोश लोग मानते हैं। मेरा तो यह खयाल है कि कम-से-कम पिछले एक हजार वर्षोंमें राज्यकी तरफसे बालकों और बड़ोंको शिक्षा और संस्कार देनेका जो काम हुआ है, वह केवल सफेदपोश लोगोंमें ही हुआ है।

आर्य — भद्र — सम्मानित जातियां हमारे देशमें आरंभमें ही रही हैं। वे अंग्रेजोंकी पैदा की हुयी नहीं हैं। संभव है कि अंग्रेजोंने उनका धैर्य कुछ बढ़ा दिया हो, परंतु अंग्रेजोंने उन्हें पैदा नहीं किया।

भद्र संस्कृतिका लक्षण मनुष्यकी तर्क और कल्पना-शक्तिका विकास है। संस्कारिताके क्षेत्रमें शास्त्री, पंडित, अलेमा, कवि, ललित कलाकार (जैसे चित्रकार, गायक इत्यादि) लोग उसके प्रतिनिधि हैं। दुनियादारीके क्षेत्रमें उसके प्रतिनिधि वकील, वैद्य, डॉक्टर, हुकीम, अव्यापक, अस्ताद और मुंशी हैं। अंग्रेजी शिक्षा-पद्धतिका संस्कृतिके विकासकी ओर दुर्लक्ष नहीं था; हां, उन पद्धतिने उसे अपने विचारोंका वेग जरूर पहना दिया है। परंतु वह तो इस्लामने भी किया था। दुनियादारीके क्षेत्रमें अंग्रेजोंने उसे भी कुछ भद्र धंधे निर्माण कर दिये हैं, जिनमें बुद्धि और परिश्रम दोनोंकी आवश्यकता पड़ती है। जिनमें बुद्धि और परिश्रम दोनोंके कामोंको अलग करके उनके बौद्धिक विभागोंके भद्र धंधे बना दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, इंजीनियरी, खेती वगैरा। अंग्रेजोंने अपनी मुहम शास्त्रीय नियम-शास्त्रों की आदतोंके जरिये जिन दुनियावी धंधोंका अधिक विकास भी किया है। अंग्रेजी शिक्षाके विरुद्ध आक्षेप करनेके वाक्यद्वारा भद्र धंधे खुले छोड़े नहीं सकता, जिसके कारण ऊपर बताया गये हैं।

भद्र संस्कृति मनुष्योंकी समानताके सिद्धान्त पर खड़ी नहीं हुयी है। तात्त्विक दृष्टिसे वह केवल मनुष्योंकी नहीं परन्तु भूतमायकी समानता बतायेगी, परन्तु दुनियादारीके कामोंमें वह केवल जितना ही नहीं कहती कि मनुष्य मनुष्यके बीच भेद होते हैं, परन्तु यह भी कहती है कि वे भेद रहने ही चाहिये। जिसलिये वह समाज-व्यवस्थाके लिये हिंसा — पशुबल — को अपरिहार्य मानती है और कहती है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपनी-अपनी मर्यादामें रखनेके लिये समाजके राजदण्डको सदा घूमते रहना चाहिये।

यह कहा जा सकता है कि व्यवहारमें भद्र संस्कृति अतन्त्र ही मानव-विभागको मनुष्य-जातिमें गिनती है, जिसे वह भद्र जीवनमें निभाये रखना योग्य और संभव मानती हो। बाकीके लोग संस्कृतिके धेनुसे बाहर और जिसलिये अस्की सम्यताकी व्याख्याके भी बाहर हैं। वे शूद्र, दास, गुलाम, गिरमिटिया अथवा और कुछ भी हो सकते हैं, परन्तु अस्के समाजके नहीं हो सकते और समाजके सारे अधिकार या मुविधायें भोगनेके पात्र नहीं हो सकते।

भद्र संस्कृतिसे अूँचे दर्जेकी अेक और संस्कृति भी प्राचीन कालसे जगतमें चली आयी है। अुसे मैं संत अथवा औलिया संस्कृति कहूंगा। कभी कभी अिसे पूर्वकी संस्कृति और भद्र संस्कृतिको पश्चिमकी संस्कृति कहा जाता है। परन्तु मुझे यह परिभाषा अुचित नहीं जान पड़ती। फिर यह भी नहीं है कि भद्र संस्कृति आसुरी है और भद्र संस्कृतिसे बाहर रहने-वाले लोग दैवी संस्कृतिके ही हैं। दोनों संस्कृतियां दुनियाभरमें प्रचलित हैं और जैसे भद्र संस्कृतिमें कुछ दैवी अंश भी हैं, वैसे ही अुसके बाहर रहनेवाले लोगोंमें आसुरी भाव भी हैं। फिर भी सारी दुनियाके देशोंमें औलियों और संतोंकी भी अेक परंपरा सदासे चली आयी है। अिन संतोंका काम जितना और लोगोंमें हुआ है अुतना भद्र लोगोंमें नहीं हुआ। वे या तो भद्रतरोंमें पैदा हुअे हैं अथवा भद्र वर्गमें जन्म लेने पर भी अुन्होंने भद्रतरोंके साथ तादात्म्य साध लिया है। प्रायः भद्र लोगोंने अुनका विरोध किया है और अुन्हें कष्ट भी दिये हैं। परन्तु अंतमें, कम-से-कम, जवानसे

बुन्हें स्वीकार किया है और बुनकी स्थूल वन्दना की है। गांधीजी बुनकी परंपराके एक पुरुष हैं।

भारतकी हो या बाहरकी, संत सम्यताके तीन सिद्धान्त हैं : मानव-मात्रकी समानता, अहिंसा और परिश्रम। भद्र लोग मानते हैं कि सम्यताके विकासके लिये फुरसतका होना बहुत आवश्यक है। संतोंका यह मत नहीं है। बुनका कहना यह नहीं है कि फुरसत अथवा आराम बिलकुल नहीं चाहिये। परंतु बुनका मत यह है कि संस्कृतिके विकासके लिये परिश्रम अनिवार्य है और फुरसतमें कुछ न कुछ खराबीका डर भी है।

जिसका कारण समझना कठिन नहीं। यह सही है कि मनुष्य केवल अन्न पर नहीं जीता, परंतु साथ साथ यह भी मानना पड़ेगा कि मनुष्य अन्नके विषयमें बेपरवाह भी नहीं रह सकता। बुन अन्न पैदा करना ही पड़ता है, फिर भले वह केवल मनुष्यके ही बलसे करे अथवा मनुष्य-बलके साथ पशुबल अथवा यंत्रबलका भी उपयोग करे। साथ ही यह भी है कि हमारे बलोंकी मदद ली जाय, तो भी मनुष्य-बलको बिलकुल अनावश्यक नहीं बनाया जा सकता और मनुष्योंके बहुत बड़े भागको तो अन्न पैदा करनेके लिये अपना ही बल काममें लेना अनिवार्य होता है। अब हमारा राज्यतंत्र पूंजीवादी सिद्धान्तों पर बना हुआ हो या साम्यवादके सिद्धान्तों पर, जब तक मनुष्योंमें यह संस्कार बढ़ाया जाता है कि परिश्रम एक महान कष्ट है, बुनकी अनिवार्यता मानव-जातिके लिये एक घोर माप है, तब तक एक ओर तो मनुष्यसे परिश्रम करानेके लिये कानून-रखदे — अर्थात् जबरदस्ती — अनिवार्य हो जायेंगे और दूसरी ओर मनुष्य हमेशा बुनसे बचनेका प्रयत्न करता रहेगा। अब साम्यवादकी यह आदर्श स्थिति आ जाय कि केवल दो ही घंटे काम करनेकी जहमत रहे, तब भी तब तक परिश्रमको आफत समझनेकी हमारी मनोवृत्ति बनी रहेगी तब तक अतना काम भी टालनेका मनुष्य प्रयत्न करता रहेगा। दूसरे पक्षमें बुन तो तब तक बुन संस्कृतिको कायम रखनेके लिये हिंसाका आशय लेता ही पड़ेगा।

मतलब यह है कि परिश्रम — यंत्रबल अथवा दलितबल दोनों — और अहिंसा सगे भाजी-बहन हैं। परिश्रमके प्रति अहिंसा पैदा होगी



तो ताय साथ अनमानता और उसे टिकाये रखनेवाली हिंसाकी मनोवृत्ति बढ़ाये बिना काम नहीं चलेगा। वेशक, मनुष्यको आरामकी आवश्यकता रहती है। परंतु आरामका स्थान उसके जीवनमें वैसा ही होना चाहिये जैसा हृदयकी क्रियामें होता है। हृदय हर बार जब फूलता और संकुचित होता है, तब उसके बीचमें उसे कुछ देर आराम लेना पड़ता है। परंतु विचार कीजिये कि कोजी हृदय अपने आरामके क्षणोंका ही आदर करे, फूलने और संकुचित होनेकी क्रियाका तिरस्कार करने लग जाय, तो उसके मालिककी क्या दशा होगी? किसी प्रकार जो समाज आरामको जीवनका ध्येय बना ले और परिश्रमकी तरफ अधिकी दृष्टिसे देखे, उसे तो अन्तमें मरना ही होगा।

‘वर्धा-मद्वति’ केवल पढ़ानेका एक नया ढंग ही नहीं, परंतु जीवनकी नयी रचना और नया तत्त्वज्ञान है। यह तत्त्वज्ञान स्वीकार हो तो उसके अनुसार समाजकी रचना करनेका दृष्टिपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। जिस तत्त्वज्ञान पर निर्मित शालाओं भद्र शालाओंसे निम्न प्रकारकी हों, यह अनिवार्य है। मैं कह चुका हूँ कि भद्र जीवनमें हिंसाका स्वीकार किया गया है, अर्थात् युद्धको भी वह जीवनकी एक आवश्यकता मानता है। जिसलिये वचपनसे ही वह बालकमें युद्धके लिये आदर पैदा करता है। वह युद्धके और रणवीरोंके योगान्तर करता है और अन्य देशोंमें तो मनुष्यको मारनेकी शिक्षा सबको अनिवार्य रूपमें प्राप्त करनी पड़ती है। हमारी दंतकथाओं और ऐतिहासिक कथाओं अधिकतर मनुष्यके हाथों हुआ मनुष्यों अथवा पशुओंकी हत्याओंका वृत्तांत ही होती हैं। धार्मिक कथाओं भी जिससे मुक्त नहीं होतीं। और रूपकात्मक कथाओं भी लड़ाई और मारकाटकी मनोवृत्तिका आश्रय लेती हैं।

जिस प्रकार, हमें एक बात यह भी ध्यानमें रखनी पड़ेगी और अपने साहित्यमें से अत्यंत सावधानीपूर्वक ऐसी कथाओं निकाल देनी पड़ेंगी, भले वे कितनी ही धार्मिक और आकर्षक क्यों न हों। और बाल-मानसके चारों ओर हमने जो पूर्वग्रह बना लिये हैं वे भी छोड़ देने होंगे। जैसे, यह मान्यता है कि अमुक आयुका बालक अमुक युगके मनुष्यका प्रतिनिधि है, जिसलिये उसे उस दशाकी पोषक कहानियां कहनी ही चाहिये।

सच पूछा जाय तो मनुष्य भले और बुरे भाव तथा सच्चे या झूठे तर्कोंको प्रगट करनेके तरीकोंमें हजारों कदम आगे बढ़ा होगा, फिर भी हजारों वर्षोंमें अनु भावों और तर्कोंके प्रकार या मात्रामें शायद ही कोई फर्क पड़ा है। यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्योंके हृदय और बुद्धिका आगे विकास हुआ है।

असका एक कारण कदाचित् यह हो कि मनुष्यने प्राचीन कालसे आज तक हिंसाकी कलाका विकास करनेके लिये बुद्धिपूर्वक अत्यंत परिश्रम किया है। परंतु अहिंसाकी कलाका विकास करनेके लिये शायद ही कोई परिश्रम अुठाया है। वेशक, प्रत्यक्ष जीवनमें तो अहिंसाका उपयोग वह शुद्धसे ही करता रहा है। परंतु यह उपयोग अुसने वैसे ही किया है, जैसे कोई अपढ़ मजदूर 'लीवर' या 'गुरुत्वाकर्षण' के कानूनोंका सहज उपयोग करता है; वह अुसका गणित अथवा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण नहीं जानता। जब विज्ञान-शोधकोंने अिसके गणित और स्पष्टीकरण समझ लिये, तब अुन्होंने अिसके उपयोगकी सैकड़ों नयी तरकीबें निकालीं। एक जमाना ऐसा था जब वैज्ञानिक मलिन विद्याके अपासक माने जाते थे। परंतु अिन शोधोंने विज्ञान-संबंधी हमारी वृत्ति ही बदल डाली है।

अिसी तरह जब अहिंसा-शक्तिका बुद्धि और मानसशास्त्रके साथ संशोधन होगा और तदनुसार मानव-जातिके पालन-पोषणकी पद्धतियां नूढ़ी जायंगी, तब कदाचित् हमें यह भी अनुभव होगा कि बाल-मानव जैसा हम मानते हैं अुससे भिन्न प्रकारका हो सकता है।

हरिजनवन्धु, २४, ३१-७-३८

## गांधीजीके शिक्षा-संबंधी विचार\*

मुझसे आपके सामने गांधीजीके कुछ महत्त्वके विचार प्रगट करनेको कहा गया है। यह काम कठिन तो है, फिर भी अपनी मर्यादाओं ध्यानमें रखकर मैंने इसे स्वीकार कर लिया है। पहली बात तो यह है कि मैं गांधीजीके जो विचार प्रगट करूंगा उनको जिम्मेदारी मेरी है, गांधीजीकी नहीं। और उनके विचारोंको मैं अपनी समझके अनुसार आपके सम्मुख रखूंगा। मेरी जिस समझमें उनको दृष्टिसे भूल भी हो तो ये विचार उनके नहीं, परंतु मेरे मान लिये जायें। दूसरी बात यह है कि उनके सब विचारोंका विवेचन करना कठिन है। केवल शिक्षा-संबंधी कुछ विचार मैं यहां पेश करूंगा।

गांधीजीने अनेक बार कहा है कि उनका कोई नया तत्त्वज्ञान नहीं है। उन्होंने जो नयी चीज बतायी है वह है दुनियादारीमें पैदा होने-वाली कठिनाइयां और झगड़े मिटानेमें मूल सिद्धान्तोंका उपयोग करनेका व्यावहारिक मार्ग। उनकी भंशा भिन्न-भिन्न महान सनातन धर्मोंका वैयक्तिक नहीं, परंतु सामाजिक जीवनमें सामूहिक रूपमें उपयोग करनेकी है। तत्त्वज्ञान तो वह है जो प्रत्येक धर्मके महात्माओंने बताया है और जिसके तीन मुख्य अंगोंका पिछली बार मैंने विवेचन किया था। वे अंग हैं अहिंसा, समानता और परिश्रम। जिन्हें उस तत्त्वज्ञानमें श्रद्धा नहीं होगी, उनकी गांधीजीके अन्य विचारों पर भी श्रद्धा नहीं बैठेगी। जिसलिये जिन तीनोंकी जड़में रहे सिद्धान्तोंका विचार करना चाहिये।

कुछ लोग पूछते हैं कि समानता और परिश्रम तो ठीक हैं, परंतु अहिंसा किसलिये? हिंसा भी क्यों नहीं? जिसका उत्तर गांधीजीके पास जितना ही है : अंध्वर पर विश्वास होनेके कारण। हालमें ही (१८-६-'३८के)

\* वर्षा में हिन्दुस्तानी तालीमी संधके तत्त्वावधानमें दिया हुआ दूसरा भाषण।

‘हरिजन’ में गांधीजीने इस विषयके लेख लिखे हैं। उनमें वे बताते हैं :

“शान्ति-सेनाके सदस्यका — वह स्त्री हो या पुरुष — अहिंसामें अटल विश्वास होना चाहिये। और यह तभी हो सकता है जब श्रीश्वरमें उसका सच्चा विश्वास हो। अहिंसाको माननेवाला मनुष्य श्रीश्वरकी कृपा और शान्तिके बिना कुछ नहीं कर सकता।”

परन्तु प्रश्नकर्ताओंको अितनेसे सन्तोष नहीं होता। वे कहते हैं कि श्रीश्वरका अस्तित्व आज शंकास्पद है। बड़े बड़े मनुष्योंकी बुद्धिने यह सिद्ध कर दिया है कि श्रीश्वर नहीं है, अतिलिजे अुमके साथ यह भी सिद्ध हो जायगा कि अहिंसा भी नहीं है।

यहां फिरसे भद्र संस्कृति और संत संस्कृतिके बीचका अन्तर समझनेकी जरूरत है। पिछली बार मैंने कहा था कि भद्र संस्कृतिमें तर्क और कल्पना-शक्तिका (जिसे हम बुद्धि कहते हैं) बहुत विकास हुआ है। परन्तु श्रीश्वरको खोजनेमें अथवा यह निश्चित करनेमें कि अुमका अस्तित्व है या नहीं, बुद्धि काम नहीं आती। हमारी पद्धति ही गलत है। जैसे कानोंसे देख नहीं सकते और आंखोंसे सुन नहीं सकते, वैसे ही श्रीश्वर-संबंधी ज्ञान हम केवल बुद्धिसे प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि यदि अुसे विषय मान लिया जाय तो भी वह हृदयका विषय है। हृदयकी गिष्ठा पर आजकल अितना कम ध्यान दिया जाता है कि अधिकांश बुद्धिमान लोग अुसे समझ भी नहीं सकते। जैसे कान और आंख सुनने और देखनेकी आवश्यक और प्रत्यक्ष अिन्द्रियां हैं, वैसे मन भी हमारी प्रत्यक्ष अिन्द्रिय है। हम अपनी भूख-प्यास अपने-आप अनुभव कर सकते हैं। हममें लुत्तन्न होनेवाले दया, क्रोध, प्रेम आदि भाव हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं। जिसमें आंख, कान आदि पंचेन्द्रियोंकी जरूरत नहीं पड़ती। तर्क और कल्पनासे वे समझे नहीं जा सकते और यदि किसीको अुमका अनुभव कर्नी हुआ हो न हो, तो वर्णन द्वारा अुसे मनकी कल्पना नहीं कराई जा सकती। इसी प्रकार श्रीश्वर भी जिस सीधे ज्ञानसे समझनेका विषय है। ‘सा’ और ‘रे’ अथवा लाल और पीलेका अिन्द्रियोंको अनुभव हो जानेके बाद अुस पर कुछ तर्क अथवा वाणीका प्रयोग हो सकता है और जिसे

जिस भेदका पता न हो उसे यह भेद समझानेका तरीका ढूँढा जा सकता है। बितनी शर्त जरूर है कि सुननेवालेके आंख-कान पूर्ण स्वस्थ होने चाहिये।

जिस प्रकार पहले हृदय यदि तैयार हो तो तर्कयुक्त वाणी द्वारा उसे थोड़ा-बहुत समझाया जा सकता है। जिसलिये रात संस्कृतिमें बुद्धि और ज्ञानकी अपेक्षा हृदयकी शिक्षा पर-अधिक भार दिया जाता है। हमारे बालकोंमें प्रेम, आदर, दया, कृपा आदि भाव उत्पन्न होनेकी और उन्हें विवेकसे कायमें रखनेकी शक्ति आनी चाहिये। यह हृदयकी शिक्षा है। जब वह हृदयके जिस साधनको पहचानने लगेगा और उसका विकास करेगा, तब वह ओश्वरके अस्तित्व अथवा नास्तित्व संबंधी विचार सुनने या करनेके योग्य बन सकेगा। अनुभवी मनुष्योंका कहना है कि ओश्वरकी खोज करनेका स्थान बुद्धि नहीं परन्तु हृदय है। फिर भी हम तर्क और कल्पनासे उसे खोजनेका प्रयत्न करते हैं और न मिलने पर निराश होते हैं।

प्राचीन संतोंने ओश्वरके बारेमें जो शब्द काममें लिया है, वही गांधीजी लेते हैं और वह है 'सत्' या 'हक'। जिसका अर्थ यह है कि सारे जगतके मूलमें एक महान सत्य — हकताला — निहित है; और जहांसे हमारी अहंवृत्ति — खुदनुमाजी — और तरह तरहके अनुभव उत्पन्न होते हैं, वह हमारा हृदय ही उसे ढूँढ़नेका स्थान है। जिस हकका सबसे बड़ा प्रमाण संसारमें चल रहा नियमपालन — हुक्म — का राज्य है। संसारमें दिखायी देनेवाली सारी भलाजी-बुराजी नियम — हुक्म — से होती है। भलाजी भलाजीके नियमसे और बुराजी बुराजीके नियमसे। भलाजीके लिये भलाजीके नियम ढूँढ़ने चाहिये और यही ओश्वरको जानने का रास्ता है। उसमें से अहिंसा, अपरिग्रह, अस्पृश्यता-निवारण, सेवा आदिसे संबंध रखनेवाले गांधीजीके सारे व्रत-विचार मिल जाते हैं।

जिनमें वर्ग-योजनाकी दृष्टिसे एक महत्त्वका सिद्धान्त है और वह है 'सर्वधर्म-समभाव' का। उस योजनामें धार्मिक शिक्षाकी क्या प्रणाली होनी चाहिये? मुझे भय है कि जिस मामलेमें हमारे विचार पूरी तरह स्पष्ट नहीं हैं।

जिसमें यह कहा जाता है कि सब धर्म समान हैं, सब सत्यकी ओर ले जानेवाले हैं और जिसलिसे सबके प्रति समान आदर रखो। जिस बातको बुद्धि और हृदयसे समझनेमें बड़ा अन्तर है। दो भाषियोंमें झगड़ा हो और यदि उसके निपटारेके लिये वे कचहरीमें जायं, तो न्यायाधीश अपनी न्यायबुद्धिसे जो निर्णय देता है वह अक्षयी होता है। परन्तु यदि वही झगड़ा वे अपनी मांके पास ले जायं, तो वह हृदयसे जो न्याय प्रदान करेगी वह दूसरी तरहका होगा। जिसी तरह यदि हम बुद्धिसे सब धर्मोंकी समानताका सिद्धान्त समझने जायं, तो अके ओर वेद या गीता, दूसरी ओर बाइबिल और तीसरी ओर कुरानको रखते हैं। और सब शास्त्रोंको समझने बैठ जाते हैं तथा प्रत्येकका पृथक्करण करने लग जाते हैं। अके ओर हम कृष्ण, बुद्ध, आसा, मुहम्मद आदिकी अके-दूसरेके साथ तुलना करने लग जाते हैं और फिर आश्चर्य प्रगट करते हैं कि जिन नबियों पूरी तरह कैसे समझा जा सकता है; अथवा कोसी बुद्धिशाली मनुष्य कहता है : हां, ठीक है, क्योंकि जिनमें से किसीमें भी सार नहीं है। अथवा गमनाय साधनेवाला मनुष्य अके दिन कृष्णका भजन, दूसरे दिन पैगम्बर मुहम्मदका और तीसरे दिन आसाका गुणगान करेगा और जिस प्रकार प्रत्येकको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करेगा। जिससे भले ही सर्वधर्म-समानता सचनी हो, परन्तु असा करनेसे भक्तिका फल नहीं मिलता। सर्वधर्म-समानताको समझनेका सच्चा मार्ग हृदयका है। प्रत्येक धर्ममें जो सत या अलिया हो गये हैं, उनको तरफ देखें तो उनके जीवनकी बाहरी तपस्वीलोकों न देखते हुए उनके हृदयकी गहराईको देखना चाहिये। असा करनेसे मायूम पड़ेगा कि उन सबका 'हक' और हुक्म (सत्य और नियम) में समान विश्वास है। सभीके सद्गुणोंके विकासमें लगनग समानता है, मानो सब अके ही मां-बापके बेटे हैं। अकेका जन्म हिन्दुस्तानमें हुआ हो, दूसरेका अरबस्तानमें और तीसरेका यूरोपमें तथा चौथेका चीनमें हुआ हो, सब भी सब अश्वरका अकेसा अनुभव और दर्शन करते हैं और हृदयों में सद्गुणों और भलाओंके बारेमें अके ही प्रकारके नियम बनाते हैं।

मूर्ति, कावा, काँस, स्तूप अथवा लिंगकी पूजा को जाय, अथवा अके स्त्रीसे विवाह किया जाय या चारसे, ये बातें तो देशकाल-परिवर्ति

के भेद हैं। जो संत जिन लोगोंमें पैदा हुआ, वहाँ जिन साधनोंका उसे पता था उनका उसने ओश्वर-प्राप्तिके लिये उपयोग किया। परन्तु ये तो मानवीय नियम हैं। ओश्वरीय नियम अनिसे अधिक गहरे हैं और अनिके विषयमें सब धर्म और सब औलियों और साधु-संतोंका एक ही मत है। 'सर्वधर्म-समभाव' को समझनेकी यही कुंजी है। इसलिये वालकोंको सब धर्मोंके शास्त्र पढ़ानेकी जितनी जरूरत नहीं, जितनी सब देशोंके ओश्वरीय पुरुषोंके हृदयोंकी गहराई प्रकट करनेवाले जीवन-चरित्र पढ़ानेकी है। और सब विद्यार्थी एक दिन हिन्दू पद्धतिसे अपासना करें, दूसरे दिन इस्लामी पद्धतिसे और तीसरे दिन आत्माकी पद्धतिसे प्रार्थना करें, यह भी जरूरी नहीं है। जो विद्यार्थी जिस धर्ममें पला हो वह उसी धर्मके ढंग पर प्रार्थना करे। सब धर्मोंके चिह्नोंका शालामें प्रदर्शन होना चाहिये, इसे भी मैं आवश्यक नहीं मानता।

शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाला गांधीजीका एक और विचार वर्ण-व्यवस्थाके बारेमें है। वर्ण-व्यवस्थाका जो अर्थ सनातनी हिन्दू मानते हैं, उसमें और गांधीजीकी कल्पनामें भेद है। 'सनातनी वर्ण-व्यवस्था' शब्द जाति-व्यवस्था और अंची-नीची श्रेणियोंका दूसरा नाम है। गांधीजी वर्ण-व्यवस्थाका जो अर्थ करते हैं, वह अलग-अलग धंधे करनेवाले लोगोंकी संगठित व्यवस्था है। परन्तु दोनों वर्ण-व्यवस्थाओंमें एक अंश समान है। पुरानी वर्ण-व्यवस्थामें भी यह आवश्यक माना जाता था कि प्रत्येक मनुष्य अपने ही वर्णका धंधा करे। गांधीजी भी इसीको ठीक मानते हैं कि जहाँ तक हो सके हरएक बालक अपने माता-पिताका ही धंधा करे। इससे बचपनसे ही धंधेके मामलेमें एक निश्चित धारणा बन जाती है। हमारी आधुनिक शिक्षामें धंधेकी दृष्टिसे वर्ण-व्यवस्था टूट गयी है। इससे मनुष्य बीस-पच्चीस वर्षका हो जाता है, तब भी यह निर्णय नहीं कर पाता कि वह किस धंधे द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करेगा। वह एकके बाद एक परीक्षा पास करता जाता है, परन्तु उसे यह पता नहीं होता कि वह किसलिये इस प्रकारकी शिक्षा ले रहा है और अपनी परीक्षाओं पास करनेके बाद कौनसे धंधेसे अपना निर्वाह करेगा। अद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी योजनामें

एक विचार यह भी होना चाहिये कि जहां तक हो सके बालकको अपने जीवनके धंधेके बारेमें स्थिर बुद्धिवाला बनाया जाय।

अन्तमें, गांधीजीके शिक्षा-संबंधी कुछ मुख्य विचार संक्षेपमें कह दूं :

(१) शिक्षाका ध्येय 'सा विद्या या विमुक्तये' है। अर्थात् विद्या द्वारा बालकको अपनी मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये। मुक्ति शब्दके आध्यात्मिक और भौतिक दोनों अर्थ किये जा सकते हैं।

(२) जब तक बालककी आजीविकाका प्रश्न हल न हो, तब तक यह ध्येय सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थात् जिस हेतुसे भी बालककी शिक्षा अक्षर-ज्ञान द्वारा नहीं परन्तु बुद्धि द्वारा होनी चाहिये।

(३) बुद्धि और शिक्षा-पद्धतिका निश्चय करनेमें हम दस प्रतिशत लोगोंको भी नव्वे प्रतिशत लोगोंका खयाल रखना चाहिये।

(४) बहुत छोटे बालकोंकी शिक्षाका आरंभ स्वच्छताकी शिक्षासे होना चाहिये। और अक्षर लिखानेसे पहले उन्हें निप्रकला (ड्राइंग) सिखाना चाहिये। बालकके हाथमें कलम या पेन्सिल रखनेमें देर लगे तो उसमें बुराई नहीं है। परन्तु तब तक उसका अज्ञान रहना जरूरी नहीं है। अनेक प्रश्नोंका ज्ञान उसे जवानी देना चाहिये।

(५) शिक्षाका माध्यम स्वभाषा ही होनी चाहिये।

(६) इतिहासमें हमें अधिकतर राजवंशोंकी अथल-मुयल, लड़ाकियां वगैरा ही पढ़ाई जाती हैं। मानव-जीवनमें ये चीजें फ्रेन या हंजेकी तरह कभी कभी फूट निकलनेवाली बीमारियां हैं। ये कोड़ी मनुष्योंका नित्य जीवन नहीं हैं। उनका नित्य जीवन तो अहिंसात्मक समाज-संगठन द्वारा चलता है और अहिंसे द्वारा मनुष्य-जातिने अपना अब तकका विकास किया है। इतिहास द्वारा जिस विकास-क्रमका ज्ञान होना चाहिये।

(७) जिसके सिवा संगीत और कवयद पर गांधीजी बहुत जोर देते हैं।



## ‘द्वारा’, ‘और’, ‘की’ ?

‘बुद्योग और शिक्षा’ तथा ‘बुद्योगकी शिक्षा’ यह भाषा और बिसका अर्थ हम जानते हैं। परन्तु अब ‘बुद्योग द्वारा शिक्षा’ यह नवी भाषा निकाली गयी है।

बिस लेखमें मैं बिन तीनोंके बीचका भेद बतानेका प्रयत्न करूंगा।

जहां साधारण लिखने-पढ़नेके साथ दो तीन भाषाओं, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि पढ़ाया जाता है और बिसके सिवा कारीगरोंके धंधोंकी भी कुछ न कुछ शिक्षा दी जाती है, उसे ‘बुद्योग और शिक्षा’ कहते हैं। यह चीज सबकी परिचित होनेसे बिसका विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं।

जहां भाषाओं, इतिहास, भूगोल आदि कुछ नहीं पढ़ाया जाता, केवल कारीगरोंके या किसी और अेकाध धंधेकी शिक्षा दी जाती है और उस धंधेके लिये गणित, विज्ञान आदिका जितनी आवश्यकता हो उतना ही ज्ञान दिया जाता है, वह ‘बुद्योगकी शिक्षा’ है। बिसमें भाषा, इतिहास, भूगोल आदि विषयोंकी शिक्षाकी या तो आवश्यकता ही नहीं मानी जाती; अथवा अैसा नियम होता है कि ये सब जो पढ़ चुके हों वे ही बिन बुद्योगोंकी शिक्षा लें। डॉक्टरी, वकालत, इंजीनियरी, हिसाब-किताब, शॉर्टहैंण्ड, टाइप-राइटिंग आदि सब मुंशीगिरीके धंधोंकी शिक्षा अधिकतर बिसी ढंगसे होती है। बिसमें जिस बुद्योगके साथ जितने विषयोंका संबंध हो उतनोंकी ही शिक्षा दी जाती है। यह ‘बुद्योगकी शिक्षा’ है। परन्तु वह बिस धंधे द्वारा ही नहीं दी जाती। फिर भी जीवन-निर्वाहकी दृष्टिसे बुद्योग और धंधेके बीच कुछ समानता होनेसे ‘बुद्योग द्वारा शिक्षा’ का बिसमें कुछ अंश होता है।

अब अेक और बुदाहरण लें।

सॉलीसिटरका पेशा लीजिये। सॉलीसिटर बननेके लिये अुम्मीदवारको किसी अन्य सॉलीसिटरके मातहत कुछ वर्ष तक काम करना पड़ता

है। मुसमें सॉलीसिटर मुस तरुणको अपने पास बिठाकर शिक्षककी भांति पाठ नहीं पढ़ाता, और न मुस पेशेकी शिक्षा देनेवाली कोअी धाला हो होती है। वह तो केवल मुस्मीदवारको दूसरे कारकुनोंके साथ अपने दफ्तरके काममें लगा देता है। धीरे धीरे मुस्मीदवार मुस कामको समझने लगता है। जो कानून मुसे सीखना है, वह मुसे स्वयं ही पढ़ लेना होता है। जिस प्रकार काम करते-करते वह दो तीन वर्षमें सॉलीसिटरके धंधेके सब रंगडंग जान लेता है। जिस धंधेके लिअे लगभग बी० अ० के बराबर साधारण शिक्षा आवश्यक मानी जाती है। जिसलिअे सॉलीसिटर अैसोंको ही मुस्मीदवारके रूपमें ले सकता है।

पहले ही दिनसे मुस्मीदवारसे जो काम कराये जाते हैं, मुनमें गायद ही कोअी अैसा काम होता है, जो केवल मुसे सिखानेके लिअे शुरू किया गया हो। दफ्तरके किसी आवश्यक काममें ही मुसे लगाया जाता है। वह मूल करे तो भले ही मुसका काम रह कर दिया जाय, परन्तु मुसके लिअे अैसा काम नहीं ढूँढा जाता जो दफ्तरके लिअे आवश्यक न हो, और केवल मुसे सिखानेके लिअे किया जाय। वह फुरसतके समय पुरानी फाइलें ढूँढ-ढूँढ कर देखता अवश्य है; परन्तु यह तो मुसकी सीखनेकी तीव्र अिच्छाकी ही निशानी है।

जिसमें (मोटे अरथमें) बुद्योगकी शिक्षा है। और वह बुद्योग द्वारा शिक्षा भी है। परन्तु मुसमें साधारण शिक्षा नहीं है। किसी तरह यह शिक्षाकी आधारस्वरूप भी नहीं है। जिसकी साधारण शिक्षा हो चुकी हो, वही जिसका विद्यार्थी हो सकता है।

जिस प्रकारकी बुद्योग द्वारा शिक्षा बहुत पुराने मनमसे तरह तरहके धंधोंमें दी जाती रही है। जब आजकी तरह सार्वजनिक शाळाएँ नहीं थीं, तब बनियोंके लड़के हिसाब और बहीखाता किन तरह सीखते थे? कायस्थोंके लड़के विद्वीपत्री और दस्तावेज लिखनेका ज्ञान किन प्रकार प्राप्त करते थे? गांवके पंडितजीके पास आठ या नौ वर्षकी उम्र तक कुछ न कुछ लिखना-पढ़ना और गणित सीख लेनेके बाद किसी नरारकी दुकान पर या बड़े कायस्थके पान बँटकर मुसके शानमें नहायता बग्ने-करते वे यह ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। मुसे स्वयं बहीखातेकी शिक्षा प्राप्तमें

बहुत कम मिली है। व्यापारी जिस चतुर्थांश या पाथी पद्धतिसे (जैसे ५०॥=॥ ६०) हिसाब करते हैं, वह बम्बयीकी जिस शालामें मैं पढ़ता था उसमें नहीं सिखायी जाती थी। वहीखाता भी नहीं सिखाया जाता था। ये चीजें मैंने बचपनसे अपने पिता और भायियोंकी दुकान पर फुरसतके समय उनके काममें मदद करते-करते सीखी थीं। जिसके लिये मुझे कोथी खास हिसाब नहीं लिखवाये जाते थे; पैसेके लेनदेनमें तथा वहीखाता देखते और लिखते-लिखते उसके नियम समझमें आ गये थे। जहां नहीं समझमें आता या भूल हो जाती वहां पिताजी बता देते थे। जिसकी पाठ्यपुस्तकें तो जब ये विषय सिखानेका भार मुझ पर राष्ट्रीय पाठशालामें आया तब मैंने देखीं।

आज भी खेतीका जो ज्ञान परंपरासे हमारे लोगोंमें है, उसे करोड़ों किसान बालक किस तरह सीखते हैं? गांवका जुलाहा, बड़आ, लुहार, कुम्हार, मोची, तैली आदि अपने-अपने धंधेका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते हैं? यह सच है कि हमारी जनता बहुत अज्ञान है और पीछे रह गयी है। फिर भी यह तो हरगिज नहीं कहा जायगा कि वह बिल्कुल मूर्ख है अथवा निरी जंगली दशामें है; न उसमें खेतीका ज्ञान है, न किसी कलाका। मुलटे इतिहाससे तो यह मालूम होता है कि सार्वजनिक पाठशालाओं द्वारा देशके जिन सब अद्योगोंको सिखानेकी संगठित व्यवस्था न होने पर भी जिन कलाओंमें लोग आजकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़े हुये थे। अब तो वे अपनी कलाओं मुलटे भूलने लगे हैं।

वात यह है कि शालाओं न होने पर भी जीवनरूपी पाठशाला तो हमारे देशमें सदा बनी ही रही है और वह शाला असंगठित रूपमें प्रत्येक घन्वेदारके घरमें ही चलती है। छोटे बच्चे बड़ोंकी सहायता करते हैं और सहायता करते-करते धंधा सीख लेते हैं। कभी-कभी वे बुम्मीदवार भी रखते हैं। कभी उन धंधेवालोंकी पंचायतों या संघोंकी तरफसे भी अपने धंधेकी शिक्षा देनेका कुछ प्रबन्ध होता है।

ये सब अद्योग द्वारा शिक्षाके दृष्टान्त हैं। ऐसे और भी कभी दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। सामान्यतः शालामें न गयी हुयी लड़कियां जिस तरह खाना बनाना, श्रृंगार करना, सीना, लीपना वगैरा घरके काम सीखती हैं,

जिस प्रकार ‘बालक स्वभाषा सीखते हैं, अथवा घरमें बोले जानेवाले नित्यपाठके स्तोत्र आदि सीखते हैं, वे शास्त्रीय पद्धतिसे विकसित न होने पर भी बुद्धिग (अथवा काम) द्वारा शिक्षाके दृष्टान्त हैं। परन्तु बुन सबमें दोष यह है कि बुनमें केवल बुन-बुन बुद्धिगोंकी ही शिक्षा मिलती है। बालकको सब तरहकी शिक्षा नहीं मिलती। जिसे हम विद्या-संस्कारकी शिक्षा कहते हैं, वह उसमें नहीं मिलती।

मेरा आशय यह कहनेका नहीं कि विद्या-संस्कार या लिखने-पढ़नेकी शिक्षाके लिये हमारे देशमें कोजी प्रबंध ही नहीं था। परन्तु अनेक देनेवाला एक स्वतंत्र वर्ग था। वह पुराणिक, व्यास, कदाकार, उपदेशक और साधु आदिका था।

कथाओं और उपदेशों द्वारा साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, धर्म, नीति, सदाचार, तत्त्वज्ञान आदिका जो कुछ ज्ञान बुन जनानेके पंडितोंको प्राप्त था, उसे वे लोगोंमें फैलाते थे। लिखते पढ़ाई न होने पर भी लोगोंमें साधारण ज्ञानका प्रचार होता था। वैजक, बुन पंडितों, साधुओं, मुल्लाओं और फकीरोंका अपना ही ज्ञान प्राचीन ग्रंथोंमें न्यासित था और वे स्वयं भी वर्तमान युगके ज्ञानसे अपरिचिन थे। जिसलिये प्राचीन साहित्य, धर्म, नीति, सदाचार, तत्त्वज्ञान आदि विषयोंमें बुनके ज्ञानका कुछ महत्त्व था; परन्तु इतिहास, भूगोल और विज्ञानकी विविध शाखाओंमें वह अधिकतर बेकार होने लगा था।

जिस प्रकार बुद्धिगका और साधारण शिक्षाका भले वह अनास्त्रीय हो हो, स्वतंत्र रूपमें प्रबंध था। बुद्धिगकी शिक्षाके लिये कन-कन-कन पिछली पांच-सात शताब्दियोंमें तो शास्त्र ही सार्वजनिक संस्थाओं नहीं होगी। वह बुद्धिगके जरिये ही दी जाती थी। साधारण शिक्षाके लिये अज्ञात पंडित और पंडितोंकी शालाओं तथा कथा-कीर्तनकी संस्थाओं थीं। शाखाओंमें केवल ब्राह्मण-धनिये आदि ऊंची मानी जानेवाली जातिधर्मके लिये ही रहते थे। बुनमें से भी कुछ बिलकुल नहीं पड़ते थे। परन्तु कथा-कीर्तनका ज्ञान सभी लोग बुझते थे; अथवा अलग-अलग जातिधर्मोंमें बुनके स्वतंत्र भेद पड़ा होते थे।

अब हम इस योजना और वर्धा-योजनाके बीचका फर्क देखें।

अधोग द्वारा शिक्षाका पुराना ढंग व्यक्तिगत और खानगो पद्धतिका है। वह या तो पिता-पुत्र-पद्धति होती है अथवा भुम्मीदवार-पद्धति होती है। जहां भुम्मीदवार-पद्धति होती है, वहां कभी-कभी कानूनके बंधन भी होते हैं। इस हद तक वह व्यवस्थित (organized) होती है। परन्तु बड़े पैमाने पर देशके सब बालकोंके लिये सार्वजनिक शालाओंके रूपमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। वर्धा-योजनाका हेतु जीवनकी इस स्वाभाविक पद्धतिको बड़े पैमाने पर, सार्वजनिक शालाओंके रूपमें, सभी बालकोंके लिये लागू करना है।

असका अर्थ यह है कि जैसे किसान खेती, बढ़ाई बढ़ाईगिरी, लुहार लुहारी, बनिया दुकानदारी, गृहिणी घर-काम आदि धंधोंकी शिक्षा अपना धंधा करते-करते अपने बच्चोंको देते हैं, अन्ती प्रकार परन्तु शास्त्रीय पद्धतिसे हमारी सारी आवश्यक शिक्षा देशके समस्त बालकोंको सार्वजनिक शालाओं द्वारा देनेका प्रबंध सरकारी तंत्रके जरिये किया जाय। असका दूसरा अर्थ यह है कि सरकार दो-चार ऐसे उत्पादक धंधे शुरू करे (१) जो बड़े पैमाने पर सीधे सरकारकी तरफसे चलाये जा सकें, (२) जो बालकोंके लायक हों, (३) जिनमें अितनी सामग्री भरनेकी गुंजायिश हो कि वे अधोग कराते-कराते उनके द्वारा साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदिकी पर्याप्त जानकारी बालकोंको दी जा सके, और (४) जो केवल बालकोंके मनोरंजन, खेलकूद या शिक्षाके लिये ही नियोजित कृत्रिम अधोग न हों, परन्तु लाखों लोगोंके जीवन-निर्वाहके भी साधन माने जा सकनेवाले सच्चे अधोग हों। इससे उनमें राज्य-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, संपत्ति-व्यवस्था आदि सारी समाज-विद्याओंका भी व्यावहारिक ज्ञान देनेकी कुदरती सुविधा मिल जायगी।

जिनमें पहली दो शर्तें सबसे महत्त्वकी हैं। पहली यह कि सरकारकी सीधी देखरेखमें बड़े पैमाने पर चलाये जा सकनेवाले कुछ उत्पादक धंधे ढूंढ़ लिये जायं। अर्थशास्त्रकी भाषामें कहें तो वे इस देशके जीवन-अधोग (Key-industries) होने चाहिये। दूसरी शर्त यह है कि वे धंधे बालकोंके लायक होने चाहिये। कितने ही धंधे ऐसे हैं जो देशके लिये जीवन-रूप

हैं, परन्तु बालकोंके लायक नहीं हैं। दूसरी ओर, कुछ घंघे ऐसे हैं जो बच्चोंके लायक तो हैं, परन्तु देशके जीवन-घंघे नहीं हैं।

बिन पिछले घंघोंकी बुद्योग द्वारा शिक्षाकी शालाओं हो सकती हैं; शर्त यह है कि अन्हें खानगी संस्थाओं सरकारकी देखरेखमें चलायें। वेशक, अनुकी संस्था बहुत थोड़ी होगी। परन्तु बुद्योग द्वारा शिक्षाके सिद्धान्तकी दृष्टिसे बिनके लिये गुंजाबिश है। सरकारकी दृष्टिसे प्रश्न यह है कि बालकोंके लायक राष्ट्रके जीवन-बुद्योग क्या हैं? स्पष्ट है कि बिनमें पहले नम्बर पर कताबी-बुनाबी ही आती है। संपत्ति-शास्त्रियोंके सभी सम्प्रदाय कपड़ेके घंघेको हमारे देशका जीवन-बुद्योग स्वीकार करते हैं, और अुसे सरकार-नियंत्रित (राष्ट्रीय—nationalized) बनानेमें भी विश्वास रखते हैं। बड़े और बालक, दोनोंके लिये वह पूरा घंघा हो सकता है। हाय-कताबी और हाय-बुनाबीके रूपमें जिसमें बड़ों और बालकोंके बीच स्पर्धाकी कोअी प्रश्न पैदा नहीं होता। साय ही, कपास अेक ऐसी चीज है, जिसने इतिहासमें पहले दर्जेका भाग लिया है। अुसके आसपास गेती, बड़बीगिरी, लुहारी, रंगाबी, धुलाबी, छपाबी आदि स्वतंत्र घंघोंके अनेक भागोंकी योजना की जा सकती है।

जिस प्रकार, बुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ यह है कि सरकार देगे हितके कुछ घंघे जिस ढंगसे चलाये कि अुनसे देशके लिये माल भी पैदा हो और बाल-शिक्षाकी व्यवस्था भी हो जाय।

बहुत बड़े पैमाने पर प्रबंध किया जा सके, ऐसा दूसरा कोअी घंघा अभी तक ध्यानमें नहीं आता। खेती, गोपालन आदि देशके जीवन-बुद्योग तो हैं। परन्तु अुनमें बालकोंका अुपयोग करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। अुनमें बड़े-छोटोंकी बराबरी भी नहीं हो सकती। अित्त-लिये यद्यपि ऐसी कुछ शालाओं सरकार चला तो सकती है, परन्तु अनुकी संस्था थोड़ी ही रहेगी।

बुद्योग द्वारा शिक्षाके लिये अलग अलग घंघोंकी खोजमें बहुतसे शिक्षाशास्त्री लगे हुअे हैं। यदि हम समझ लें कि वही घंघे शालाओंके लिये बच्चा काम दे सकते हैं, जिन्हें सरकार-नियंत्रित बनाना संभव हो, तो खोज आसान होगी। जो ऐसे नहीं बनाये जा सकते, अुनमें स्पर्धा नारण

बालकोंकी बेगार, महंगाभी और महंगाभीके कारण नुकसान वगैराकी कभी अलझनें पैदा होंगी। जिन धंधोंको सरकारी बनाया जा सकता हो, उनमें मालकी कीमत ठहराना सरकारके हाथमें रहेगा। जो धंधे सबके लिये खुले हों, उनमें न्याय और स्पर्धाके प्रयत्नोंको हल करना कठिन है।

अद्योग द्वारा शिक्षाकी पुरानी पद्धतिमें और जिस नयी योजनामें जो दूसरा भेद है, वह उपरोक्त बातोंसे ध्यानमें आ सकता है। वह यह है कि हानिका धंधा न तो किया जा सकता है और न बालकोंसे कराया जा सकता है। यह तत्त्व दोनों पद्धतियोंमें समान है। परंतु पुरानी पद्धतिमें धंधेका अद्देश्य लाभ अर्जाने (profit-making) का होता है, जब कि वर्तमान-योजनामें लाभ अर्जानेका हेतु नहीं हो सकता। यह हेतु छोड़ कर धंधा करनेका अर्थ ही तो धंधेको सरकारी बनाना है।

दोनों पद्धतियोंमें एक और भी भेद है। पुरानी पद्धतिमें गुरु और शिष्य दोनोंका यह अद्देश्य होता है कि अमुमीदवारको जिस ढंगसे तैयार किया जाय (बल्कि वह तैयार हो जाय) कि उस धंधेसे वह अपनी जीविका चला सके। और केवल अतना ही उसका अद्देश्य होता है। नयी योजनामें ऐसा अद्देश्य और अतना ही अद्देश्य नहीं होता कि विद्यार्थी उसे सिखाये जानेवाले धंधेसे ही अपनी जीविका चलाये। उसमें कातने-बुनने पर जिस हेतुसे जोर नहीं दिया जाता कि हिन्दुस्तानको कातने-बुननेवाले लोगोंका राष्ट्र बना दिया जाय। परन्तु उसका अद्देश्य यह है कि उसके द्वारा बालकोंके शरीर, अिद्रियों, मन और बुद्धिको पूरी तालीम मिले और लड़का या लड़की मनचाहा धंधा सीखने योग्य बने। परंतु साथ ही विद्यार्थीको यह आश्वासन भी दिया जाता है कि यदि वह किसी और धंधेमें सफल न हो सके, तो भी कम-से-कम कातने-बुननेका धंधा करके तो अपना गुजर चला ही सकेगा। जिसके अलावा यह बात भी है कि किसी अपढ़की अपेक्षा ही नहीं, परन्तु केवल आजकलकी पाठशालाओंमें पढ़े हुये विद्यार्थीकी अपेक्षा भी वह किसी कामको ज्यादा अच्छी तरह कर सकेगा; और जिससे दोनों अपरिचित हों उसे सीख लेनेमें वह अधिक होशियार साबित होगा। यदि यह परिणाम न निकले तो समझना चाहिये कि शिक्षामें कहीं न कहीं दोष है।

जिस प्रकार, यह केवल साधारण शिक्षा और बुद्योगकी शिक्षा नहीं है और न (बुद्योगके मारफत या स्वतंत्र रूपमें) केवल बुद्योगकी शिक्षा है, परंतु बुद्योग द्वारा पूरी शिक्षा देनेकी कल्पना है। ऐसा हो सकता है कि अविवेकसे हम जिस कल्पनाको बिगाड़ दें या हास्यास्पद दिखायी देनेवाला स्वरूप दे दें। यह अनुभवहीनता अथवा नासमझीका परिणाम होगा। परंतु जिससे डरनेकी जरूरत नहीं। अनुभव उसे सुधार देगा। मूल वस्तु यह है कि जीवनमें चल रही कुदरती पद्धतिको शास्त्रीय रूप देनेका यह प्रयत्न है और जिस रूपमें यह योजना पहली ही बार शिक्षाशास्त्रियोंके सामने रखी गयी है। यह भी याद रखना चाहिये कि बुद्योगके निवा जिस कुदरत और समाजके बीच वालक रहता है, उसे भी शिक्षाका साधन बनाने पर जिसमें जोर दिया गया है।

चरखा-संघने हाथ-कतायी और हाथ-युनाजीके धंधेको देशमें फैलाया है। जिसमें चरखा-संघका हेतु किसी कंपनीकी तरह जिस बुद्योगमें नफाखोरी करना नहीं है, परंतु देशमें धन पैदा करनेके साथ धुने पैदा करनेवालोंकी स्थिति सुधारना है। जिसलिजे चरखा-संघको कानने-बुननेवालोंका शोषण करनेकी नीति स्वीकार नहीं है। जो चीज चरखा-संघ बड़ी बुझके लोगोंमें कर रहा है, वही तालीमी संघको देशके बालकोंमें करनी है। बालक छोटे जरूर हैं, परंतु जिसलिजे यह जरूरी नहीं कि वे घरमें या शालामें बेकामाबू और बेअपजानू (unproductive) बन कर बैठे रहें। देशका धन बढ़ानेमें वे भी हाथ बंटा सकते हैं। परंतु जिस काममें उन्हें लगानेमें हमारी दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिये। वह यह कि जिस काममें उन्हें लगाया जाय उसमें उन्हें काम होना चाहिये। जिसलिजे यह काम धंवा चलानेवाली संस्थाओंका नहीं है। जिसे स्वयं सरकारको या तालीमी संघ और विद्यार्थी जैसी संस्थाओंमें करना चाहिये।



## अद्योग द्वारा शिक्षा

[ गुजरात विद्यापीठके शिक्षक-प्रशिक्षण वर्गके सामने दिये हुअे संशोधित भाषण । ]

गांधीजीने अद्योग द्वारा शिक्षाका अेक नया विचार देशके सामने रखा है। अुसे पेश करने समय अुन्होंने कहा था कि यह मेरी आखिरी विरासत है और मुझे लगता है कि अिससे अधिक महत्त्वकी भेंट मैं देशको नहीं दे सकता। स्पष्ट है कि अैसी प्रस्तावनाके साथ पेश की गयी योजनाका हमें भी गंभीरतासे अध्ययन करना चाहिये। हम देखें कि अुनके विचारोंमें नया क्या है।

हम दो प्रकारकी शिक्षासे परिचित हैं। पुस्तकोंकी शिक्षा और अुद्योगकी शिक्षा। हम कहते हैं कि बढ़ी, लुहार, कुम्हार, रंगरेज, अिजीनियर वगैराके काम सीखनेवाले अुद्योगकी शिक्षा ले रहे हैं। आप सब औद्योगिक शिक्षाके शिक्षक नहीं हैं। आपके विद्यार्थीसे कोअी पूछे कि तुम क्या जानते हो, अथवा आपसे पूछे कि आप क्या पढ़ाते हैं, तो अुत्तर मिलेगा कि दूसरी, चौथी या छठी किताब, फलां भूगोल, अमुक अितिहास, गणितका अमुक भाग आदि। अर्थात् कुछ पुस्तकीय विद्यार्थे विद्यार्थी जानते हैं और आप अुन्हें पढ़ाते हैं।

कुछ जगहों पर पुस्तकों और अुद्योग दोनोंकी शिक्षा दी जाती है। अैसी शालाका विद्यार्थी (अुदाहरणके लिये) कहेगा कि मैं पांचवीं किताब पढ़ता हूं और अिसके सिवा बढ़ीका काम सीखता हूं। यह नहीं कहा जा सकता कि अुसकी पुस्तक-शिक्षाके विषयों और अुद्योगके विषयोंके बीच कहीं संबंध आता ही होगा। अुदाहरणार्थ, यह हो सकता है कि अुसे गणितमें अितनी शक्करमें अितनी रेत अथवा अितनी गैलन शराबमें अितना गैलन पानी मिलानेसे मिश्रणका या नफे-नुकसानका क्या अनुपात आयेगा यह जांच करनी हो। भूगोलमें वह अमरीका महाद्वीपके विषयमें

सीखता हो और इतिहासमें वावरके विषयमें पढ़ रहा हो; और विज्ञानमें बाबाज या बिजलीका विषय सीखता हो। बिन सबका बढ़ाईके कामसे कोई संबंध नहीं हो सकता। इस प्रकार पुस्तकोंके विषयको पुस्तकशालामें और बुद्धोगके विषयको बुद्धोगशालामें अलग करके रखा जाता है। पुस्तकशालाका शिक्षक बुद्धोगशालाके शिक्षकके और बुद्धोग-शिक्षक पुस्तक-शिक्षकके विषय नहीं समझ सकता।

यह ढंग अशास्त्रीय है, यह समझानेकी शायद ही जरूरत होनी चाहिये। बालक जो जो विषय सीखे उनका परस्पर काफी संबंध होना चाहिये। जो अनेक वस्तुओं वह सीखता हो, उनमें से महत्त्वकी वस्तुओंके आसपास दूसरे विषय गुंथे होने चाहिये। अनेक विषयमें से दूसरा विषय जुड़कर निकलना चाहिये।

क्या यह संभव है? यह संभव है और अंता ही होना चाहिये, यही बतानेका वर्धा-योजनाका प्रयत्न है।

बुद्धोग द्वारा शिक्षा उसका मुख्य बिन्दु है। मुख्य बिन्दु कहा है, जिसलिजे यह समझ लेना चाहिये कि उसमें कुछ उपबिन्दु भी हैं। जाकिरहुसेन कमेटीने तीन बिन्दुओं पर जोर दिया है: बुद्धोग, समाज और कुदरत। प्रत्येक मनुष्य त्रिविव वातावरणसे घिरा रहता है। अपनी जलवायुके वातावरणसे, अपने सामाजिक वातावरणसे और अपने औद्योगिक वातावरणसे। जलवायु और समाज मिलकर उसके बुद्धोग पर असर डालते हैं। परंतु अनेक बार उसके स्थिर हो जानेके बाद उसके जीवनका अधिकतर भाग उसके औद्योगिक वातावरणसे घिरा रहता है। वही उसके जीवनका सबसे बड़ा आधार बनता है। जिस प्रकार व्यवहारमें बुद्धोग मनुष्यके बाह्य जीवनका मुख्य बिन्दु है और समाज तथा कुदरत दूसरे दो उपबिन्दु हैं, यह वर्धा-योजनामें कहा गया है। जिस मुख्य बिन्दुकी तरफ ध्यान खींचकर उसके आसपास शिक्षाको गूँथना चाहिये, अंता पहली बार गांधीजीने बताया है।

परंतु बुद्धोग तो अनेक हैं। उनमें से शिक्षाके लिजे कौनसा चुना जाय? और शिक्षा भी किसकी? बड़ी बाल्यके स्त्री-पुरुषोंकी नहीं; परंतु सातसे चौदह वर्षके छोटे बालकोंकी। बुदाहरणार्थ, जिसने मोटर चढ़ाने का

छत पर डालनेके तीन बनानेका बुद्योग नहीं सोचा जा सकता। साथ ही बिसमें थोड़ेसे शहरी बालकोंका विचार नहीं करना है, परंतु दूर दूरके गांवोंमें बसनेवाले करोड़ों गरीब और पिछड़े हुए बालकोंका विचार करना है। जिस प्रकार हमें ऐसे बुद्योगोंका विचार करना है, जो करोड़ों बालकोंके लिये सोचे जा सकें और जिनके आसपास बुनकी सारी शिक्षा गुंथी जा सके।

ऐसे बुद्योगोंमें पहले नम्बर पर और अधिकसे अधिक व्यापक खादीका बुद्योग ही नजर आता है। यह सच है कि खेती हमारे देशका पहले नम्बरका और सबसे अधिक व्यापक व्यवसाय है, परंतु यह व्यवसाय बालकोंका नहीं है। बिसमें बहुतसे बड़ोंके साथ थोड़ेसे बालक सहायकके तौर पर काम कर सकते हैं, परंतु बुनकी बराबरी नहीं कर सकते। बारह वर्षकी बुम्रसे कमके बालक बिसमें महत्त्वपूर्ण भाग नहीं ले सकते। बिसे बारहों महीने चलानेके लिये जो प्राकृतिक अनुकूलताओं और जमीनका सावन चाहिये, वे सब जगह नहीं मिल सकते। जिस प्रकार महत्त्वका व्यवसाय होने पर भी शिक्षाके माध्यमके रूपमें उसका उपयोग मर्यादित क्षेत्रमें ही हो सकता है। दूसरे व्यवसाय बितने व्यापक भी नहीं हैं; और बुनमें भी बालकोंकी बुम्र तो बाधक होती ही है। बिसलिये खादीका बुद्योग ही अधिकसे अधिक व्यापक और अनुकूल मालूम हुआ है।

परंतु बिसके साथ बुद्योग द्वारा शिक्षाके माध्यमके रूपमें भी खादी-बुद्योगमें आश्चर्यजनक सुविधाओं हैं। अत्यन्त प्राचीन कालसे लेकर आज तक कपासने हमारे देशका इतिहास निर्माण करनेमें बड़ा भाग अदा किया है। ऐसा मालूम होता है कि कपासकी खेती और उसे कातने, बुननेकी खोज हमारे ही देशने पहले की होगी। 'पेड़ पर बुगनेवाली बुन' और उसके महीन और मुलायम कपड़े देखकर विदेशी आश्चर्यचकित हो गये थे और उससे भारतका कपड़ेका आन्तर-राष्ट्रीय व्यापार जमा था। उसने विदेशियोंको भारतकी ओर आकर्षित किया और उसके कारण जो अनेक राजनीतिक परिवर्तन हुए बुनका परिणाम आजका हमारा भारत है। जिस प्रकार खादीके साथ हमारे देशका इतिहास गुंथा हुआ है। बिसी प्रकार भारतके बाद जिन जिन देशोंने कपासकी खेती या कपासके

कपड़ेके बुधोगका विकास किया बुन देशोंका विचार करें, तो लगभग सारे जगतके इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाज-रचना तथा राजनीतिके अनेक प्रश्नोंमें हमें जाना पड़ेगा। कपासने मानव-जीवनमें जितना अधिक महत्त्वका भाग अदा किया है।

कपासकी खेतीसे लेकर विविध रंगोंसे छपी हुई ग्वादी तकका सारा ज्ञान देने लगें, तो बुनमें विज्ञान और गणितके कितने विषयोंका अध्ययन करना पड़ेगा, यह विचार करना कठिन नहीं। यंत्रशास्त्र, पदार्थविज्ञान, रसायनशास्त्र, कृषिविद्या, वनस्पति-विद्या, जंतुशास्त्र, अंकगणित, भूमिति आदिके विविध प्रकरण जिसमें से अनिवार्य रूपमें पैदा होंगे। छादी द्वारा यह शिक्षा किस हद तक दी जा सकती है, यह परेशानी होनेके बजाय किस हद तक शिक्षा देकर संतोष माना जाय, यही परेशानी हो सकती है।

जिसके सिवा जिसकी आध्यात्मिक संभावना भी कम नहीं है। जिसमें अहिंसा-प्रधान संस्कृतिकी बुनियाद है। जोर-जबरदस्ती नहीं। परंतु परिश्रम ही जिसका मूल मंत्र है। कबीर जैसे जुलाहेने जिसमें से केवल छादीके धान नहीं निकाले, परंतु धर्म और तत्त्वज्ञानके निष्ठांत भी पुनः प्रकट किये हैं। हमारी भाषाकी कितनी ही कहावतों और कई प्रयोगों तथा हमारे जीवनकी कितनी ही दृष्टियोंके आसपास चरता, पीजत, करत, रंगाजी-काम बगैरा गुंये हुए हैं।

मैं यहां केवल दिग्दर्शन ही करा रहा हूं। व्यवहारमें यह कैसे जायेगा, जिसका आधार शिक्षकों पर है। यह अभी तक व्यवहारमें लागू करने पर व्यवस्थित करके दिखाया नहीं गया है। जिसलिए मैं मानता हूं कि जिसका प्रारंभ करनेके लिये शिक्षा-विभागके अनुभवी, बुद्धिमान और भावनावाले शिक्षक पहले चुने गये हैं। जिसलिए जिन शिक्षकों के पास बहुत कुछ आधार आप लोगों पर है। आपको अपनी गहन-गतिमान पूरी तरह उपयोग करके बुधोग और बुन वन विषयोंका अध्ययन कुदरती मेल साधना है। साथ ही दूसरे दो बुधविन्दुओंको भी भूला नहीं है। जिन दो बुधविन्दुओं पर मैं बोल नहीं रहा हूं, क्योंकि मैं नहीं हूँ। जिसका अर्थ यह नहीं कि बुद्धि मैं भुलाना चाहता हूँ।

बिस्के लिये आपको स्वयं बुद्योगमें पूरी प्रवीणता प्राप्त करनी होगी। केवल पुस्तक-शिक्षकोंसे यह काम नहीं होगा। यह असंभव नहीं कि कोई बालक आपसे भी बुद्योगमें बढ़ जाय, क्योंकि आप देखते प्रारंभ कर रहे हैं। परंतु आप बुद्योगमें काफी कुशलता प्राप्त नहीं करेंगे तो काम नहीं चलेगा।

तकली पर आपको दायें बायें दोनों हाथोंकी पूरी गति प्राप्त कर लेनी चाहिये। किसी तरह कभी पींजने और चरखा चलानेमें। बिन सबके लिये जिसे अरुचि होगी वह यह प्रयोग सफल नहीं कर सकता। मैं मानता हूं कि आप तो बुत्साह और धृष्टासे आये हैं, बिसलिये आपको बिस वारेमें बहुत कहनेकी जरूरत नहीं।

हरिजनबंधु, २६-३-३९

## ७

### जीवन-निर्वाहकी शिक्षा

हम सब जानते हैं कि हमारा देश शिक्षामें बहुत ही पिछड़ा हुआ है। बिसलिये कितने ही वर्षोंसे हम यह मांग कर रहे हैं कि शिक्षाका प्रसार करो, शिक्षाका प्रसार करो। कांग्रेस सरकार बननेके बाद स्वामाविक रूपमें हम बिसके लिये अधिक अधीर हो गये हैं।

परन्तु दूसरी ओर जो लोग शिक्षा पाये हुये हैं, उनमें से बहुतोंकी स्थितिकी जांच करें तो हमें निराशा होती है। शिक्षा पढ़ाती अधिक है या भुलाती अधिक है, यह एक प्रश्न ही है। हम जानते हैं कि जो पढ़ते हैं वे बापदादोंका धंधा भूल जाते हैं, और बूँसके बदलेमें बहुत ही थोड़े लोग कोई नया धंधा सीखते हैं। किसानका पढ़ा-लिखा लड़का खेतोंके वारेमें कुछ नहीं समझ सकता। कुम्हारका अपढ़ लड़का मिट्टीके घड़े उतार सकता है, परन्तु बूँसके पढ़े-लिखे लड़केको मिट्टी गूँधना भी नहीं आता। दरजीका शिक्षित लड़का न सी सकता है, न नाप ले सकता है। पढ़नेके बाद बिन सबकी दृष्टि कोई क्लर्कीकी नौकरी प्राप्त करने पर ही

जाती है। हमारी भाषा (गुजराती) में कारकुन और शिक्षक दोनों 'महेता' (मुंशी) कहलाते हैं, क्योंकि दोनोंका कागज-कलमके साथ सम्बन्ध रहता है। बहुतसे अपढ़ माता-पिता जिस परिणामको समझते हैं, विसीलिअे उन्हें अपने बालकोंको पढ़ानेका मुत्साह नहीं रहता। हमारे देशमें शिक्षाका परिणाम खुलटा यह आया है कि कच्ची प्रकारका परम्पराने चला आया ज्ञान भी खतम होता जा रहा है। बुढ़ियाका घरेलू पैघऊ बुढ़ियाके साथ मर जाता है, क्योंकि उसकी पढ़ी-लिखी लड़की उसमें रस नहीं लेती। विसी तरह कितने ही प्रकारके कला और कारीगरोंके काम किस प्रकार होते थे, यह जाननेवाले अब नहीं रहे।

शिक्षितोंकी दशा कुछ संतोषजनक हो, तो हम कहेंगे कि भले यह पुराना ज्ञान गया तो गया। परन्तु असी बात भी नहीं है। लड़का चार किताब पढ़ लेता है और प्रश्न खड़ा हो जाता है कि अब क्या किया जाय? चार वर्षमें पिताके धंधेसे बरिच हो जाय, अितना ही वह पढ़ता है। अब कोजी मार्ग सूझता नहीं, अिसलिअे आगे पढ़नेका निश्चय होता है। जिस प्रकार वह मैट्रिक तक चला जाता है और फिर वहीका वही प्रश्न पैदा होता है। लेकिन फिर भी कुछ नहीं गूझता। और आशा तो अमर है। अिसलिअे वह कॉलेजमें जाता है। जिस प्रकार जीवनके बीस-बाजीस वर्ष बिना किनी ध्येयके चले जाते हैं। जीवनमें बीस-बाजीस अमूल्य वर्ष अनिश्चितताका संस्कार मजबूत करनेमें ही बीते, तो सारे जीवन पर उसका कैसा परिणाम होगा?

जिसके सिवा हमारी शिक्षा अेक और दृष्टिमें भी पंगु निछ रही है। हमने जो कुछ पढ़ा है, वह अपने अपढ़ माता-पिता, भाभी-भहन या पत्नीको हम नहीं दे सकते। बालक पाठशालामें जो कुछ सीखता है उसकी बात वह घर जाकर नहीं कर सकता। अुलटे, यदि हमारी शिक्षा ऐसे कि 'क्यों बैठा, तू क्या पढ़ता है, मुझे समझा तो', तो बालक समझा, 'वह बठिन है, तेरी समझमें नहीं आयेगा।' शालामें हम मर्ममन विज्ञान जानते और प्रयोगशालामें उसका प्रयोग करते हैं, परन्तु घर पर उसका कोजी अुपयोग नहीं कर सकते। ज्ञान संशयमय होता पाठलि। जिसके बजाय वह प्राप्त करनेवालेमें ही पैदा रहता है। जिसका परिणाम

यहां तक होता है कि आजकलका ग्रेज्युअेट बीस वर्ष पहलेके ग्रेज्युअेटको भी अपढ़-जैसा ही समझता है।

शिक्षाकी यह स्थिति है। अब अधिधितोंको देखें तो अपढ़ बालक सात-आठ वर्षकी बुझसे ही अपने माता-पिताकी कुछ न कुछ सहायता करने लगता है। पांच-छह वर्षका होते ही जब मां काम पर जाती है, तब वह छोटे भाबी-बहनको संभालता है। जरा बड़ा होते ही ढोरोको संभालने लगता है और घरके छोटे-छोटे काम कर डालता है। बारह वर्षका होने पर बापके साथ काम करने जाता है, और सोलहवें वर्षमें तो घरका भार उठाने लायक माना जाता है। इस तरह पांच-छह वर्षमें ही वह कुटुम्बका बोझा हलका करनेमें सहायक होता है। भले ही प्रत्यक्ष मजदूरीके रूपमें उसके हाथमें कुछ भी न रखा जाता हो, परंतु उसके कामका आर्थिक मूल्य तो है। हमारा देश अितना गरीब है कि कुटुम्ब यह लाभ छोड़ नहीं सकता। माता-पिता कोभी अपने बालकोंके शत्रु नहीं होते। साथ ही अपढ़ होने पर भी वे विलकुल मूढ़ हैं, यह समझनेका भी कारण नहीं है; परंतु आर्थिक परिस्थितिसे विवश हो जानेके कारण ही वे बालकोंको आसानीसे शालामें नहीं भेज सकते।

फिर भी, हम अनिवार्य शिक्षाका विचार करते हैं, क्योंकि देशको शिक्षा दिये बिना भी काम नहीं चल सकता। वर्तमान शिक्षाके बारेमें असंतोष हो तो उसे सुधारें, नवी शिक्षाके विषयमें सोचें, परन्तु शिक्षाहीन स्थिति कायम नहीं रखी जा सकती।

अब अनिवार्य शिक्षाके अर्थका विचार करें। जिसका अर्थ यह है कि लगभग चौदह वर्षका हो तब तक बालक कम-से-कम छह घंटे रोज सरकारके अधिकारमें रहे। माता-पिताको उसे सरकारको सौंपना ही पड़ेगा। जिस प्रकार जो सरकार लोगों पर बन्वन लगाती है, उस पर दो जिम्मेदारियां सहज ही आ पड़ती हैं। सरकार जनताकी है, जिसलिये ये दो जिम्मेदारियां उठानेकी तैयारी हो तो ही वह शिक्षाको अनिवार्य करके अपना अस्तित्व बनाये रख सकती है। एक जिम्मेदारी यह है कि माता-पितासे बालकको ले लेनेके फलस्वरूप उन्हें जो आर्थिक असुविधा उत्पन्न हो, उसका बदला वह बालकके द्वारा ही किसी न किसी तरह चुका दे; और दूसरी यह कि

सरकार माता-पिताको यह आश्वासन दे कि जिस प्रकार शिक्षा पाया हुआ बालक शिक्षाके परिणामस्वरूप बेकार नहीं बनेगा। मतलब यह कि वह बालक यदि सरकारको अपना परिश्रम देनेको तैयार हो, तो खुदसे काम लेकर उसे जीवन-निर्वाह होने लायक मजदूरी देनेकी सरकार तैयारी रखे।

देशकी परिस्थिति, गरीबी, बेकारी, अब तककी शिक्षाकी ग़ुटियाँ और ये दो जिम्मेदारियाँ, जिन सबका एक साथ विचार करने पर जिसका अुपाय 'अुद्योग द्वारा शिक्षा' हो नूज़ सकता है।

अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ किसी धंधेकी पूरी तालीम नहीं है। जिसका अर्थ यह भी नहीं है कि बालक जो अुद्योग करता हो, वही धंधा उसे जीवनमें करना है। बालकको हम फक्का घुंटवाते हैं और पहाड़े रटवाते हैं, जिसका अर्थ यह थोड़े ही है कि वह बालबच्चे की पहाड़ोंकी पुस्तक पढ़कर ही रह जायगा? जो पहली, दूसरी या अन्य पुस्तकें वह वर्गमें पढ़ता है या सवाल करता है, खुदमें उनको पुस्तकीय शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती। यह कक्का और पहाड़े खुद लेखन-वाचन और गणितकी कुंजियाँ जरूर देते हैं। परन्तु वह शिक्षा खुद किसी तरह अुद्योगमें लगनेकी कुंजी नहीं देती; क्योंकि सारी शिक्षामें खुदसे किसी अुद्योगके मूलाक्षर ब्यवा पहाड़े रटवाये ही नहीं जाते। खुदसे खुदका मन जिस ढंगसे तैयार होता है कि अुद्योगके प्रति खुद उत्तुंग हो जाय।

अतः अुद्योग द्वारा शिक्षा जिस ग़ुटिको सुधारनेके लिये है। जहाँ और कुशल दोनों प्रकारकी मजदूरी करनेकी बालकको वादत पड़े और खनी रहे, उसे करनेकी जानकारी हो, खुदमें खुद रस आवे, जिम्मे भी अुद्योगमें लगने और खुदसे सीख-लेनेमें खुद प्रतिष्ठा मान्य हो, यह अुद्योग द्वारा शिक्षाका एक अंग है।

परन्तु यह भी कभी तरहसे किया जा सकता है। अँली-अँली प्रशिक्षण देदी जा सकती हैं, जिनसे बालक खुदहसे गान तक तोड़-फोड़ करता रहे, कठिन परिश्रम करे, उसके द्वारा कुछ हद तक ब्रह्मचर्य मगैर और जिन्दियाँ भी कसें, और फिर भी खुद अुद्योगका अर्थ ही सीखने लिये



आवश्यक किसी वस्तुके उत्पादनका वातावरण न मिले। यह सब अेक प्रकारके खेलकी तरह ही किया जाय।

तब बुद्योग द्वारा शिक्षामें बुद्योगका अर्थ जीवनमें महत्त्वका भाग अदा करनेवाला कोभी बुद्योग समझना चाहिये। और अैसे बुद्योग द्वारा शिक्षाकी योजना करनी है। दूसरे शब्दोंमें यह उत्पादक बुद्योगकी अववा जीवन-निर्वाहकी शिक्षा कही जा सकती है।

बिसलिअे वालक शालामें आकर किसी न किसी बुद्योगमें लग जाय। बिस बुद्योगका अुसके और जिस समाज या गांवमें वह रहता है अुसके जीवनमें महत्त्वका स्थान होना चाहिये। शालामें आकर अुसे अैसा कुछ करना और सीखना चाहिये, जिससे अुसके माता-पिता भी थोड़े ही समयमें जान लें कि अुसका शाला जाना स्वागतयोग्य है; वह घरमें कुछ न कुछ लानेकी शक्ति प्राप्त कर रहा है; वह कुछ अैसा पढ़ रहा है जिसकी छूत घरमें लगे तो घरको भी लाभ होगा।

आजके ग्रामजीवन पर दृष्टि डालें तो चारों ओर निराशा फैली हुअी दिखाअी देती है। अपनी आर्थिक चिन्ताअें कैसे मिटें, बिसका किसीको कोअी मार्ग नहीं सूझता। बिस निराशाकी ग्लानिको मिटानेके लिअे लोग गलत मार्ग पर लग जाते हैं। निराशाको भूलनेके लिअे वे सट्टा, जुआ, नशा आदिके व्यसनोमें फंसते हैं। जीवनकी आवश्यकताअें पूरी करनेवाला बुद्योग ही बिस निराशाको मिटानेका अेकमात्र अपाय है।

माता-पिता देखेंगे कि वालक शाला जाकर आलसी नहीं, परन्तु काम करनेवाला बनता है। अपने कपड़ोंके लायक सूत तो वह थोड़े ही समयमें कातने लगता है; फुरसतके समयमें तकली चलाता है, पीजन चलाता है या कोअी न कोअी सफाअी-काम करता है, फुलवाड़ी लगाता है या अैसा ही कुछ करनेमें मशगूल रहता है। बिसके अलावा, मैं तो यह भी चाहूंगा कि वालककी मजदूरीका कुछ हिस्सा अुसे खुराकके तौर पर मिले। मुझे निश्चित ही अैसा लगता है कि अधिकांश वालकोंकी सुस्ती, शारीरिक या मानसिक अचपलता और मंद बुद्धिका कारण अुचित पोष्टिक खुराककी कमी है। वैसे भी सरकारने गांधीजीका स्वावलंबी शिक्षाका आग्रह स्वीकार नहीं किया है। बिसका अर्थ यह है कि वह शिक्षाका खर्च दूसरी तरह

भी निकालनेकी हिम्मत करेगी। तो पैदावारका अंश बालकको देनेकी बात गंभीरतासे विचारने जैसी है। असा हो तो माता-पिताको बालकका व्यय घरसे गैरहाजिर रहना नहीं खटकेगा। अन्हें मवेशी संभालनेकी परेशानी होगी। जिसके लिये वे दूसरा रास्ता खोजेंगे। परन्तु वे बालकको शाला जानेसे रोकना नहीं चाहेंगे। जिसके सिवा यदि अन्हें यह विश्वास हो जाय कि बालक और कुछ चाहे न कर सके, लेकिन कातने-बुननेकी मजदूरी करके तो पेट जरूर भर सकेगा, तो अन्हें उसके भविष्यकी चिन्ता नहीं रहेगी। जिस प्रकार बुधोग द्वारा शिक्षा अुनके लिये आशाका स्थान बन जायगी।

हरिजनबन्धु, २-४-'३९

८

## नयी तालीमका शिक्षक

चरखा-संघके नामसे आप सब परिचित हैं। आप अुसे गादी बुनना करनेवाली संस्थाके रूपमें जानते हैं। जिसका अंग्रेजी नाम अर्थिक मूक्य है। अुसका अर्थ होता है कातनेवालोंका संघ। यह संस्था साधारण अर्थमें व्यापारिक संस्था नहीं है। मजदूरीसे हाथ-कताजी और दुनाजी कटपा कर तथा लोगोंकी देशभक्तिकी भावनासे लाभ कृडाकर अेक प्रकारके कपड़ेका व्यापार हयिया लेना और नफा कमाना अुसका अुद्देश्य नहीं है। जिसके कार्यकर्ताओंको जितनी खादी वे अुत्पन्न करायें ना देंगे अुन्हे हिस्सावसे दलाली या नफेमें हिस्सा नहीं दिया जाता। अुन्हें तो अुन्हा निश्चित वेतन ही मिलता है। जिसका कारण यह है कि चरखा-संघ खादीका व्यापार करनेके लिये खादीके काममें नहीं पड़ा है, परन्तु कताजी द्वारा गरीब ग्रामीणोंकी अर्थिक और सामाजिक सेवा करनेके लिये जिसमें पड़ा है। अुसके कार्यकर्ताओंका कर्तव्य सबसेसे सस्ते मजदूर बनकर खादीके डेर पैदा कराना और अुन्हें नहंगीसे नहंगी कीमत पर बेचना नहीं है; न निश्चित मजदूरी बीनानदारीके साथ नफा देनेमें ही अुन्हा

कर्तव्य पूरा हो जाता है। परन्तु कार्यकर्ताओंसे यह अपेक्षा रखी जाती है कि वे कातनेवालों और बुननेवालोंके जीवनमें प्रवेश करें, बुनके जीवनको सुधारें और बुनमें जागृति पैदा करें।

नयी तालीमके शिक्षकोंका कर्तव्य भी इससे मिलता-जुलता है। बुनका भी संपत्ति उत्पन्न करनेवाले कार्यकर्ताओंका एक समूह है। बुनका बुद्देश्य व्यापार करना नहीं, परन्तु जिस संपत्तिको पैदा करनेवालोंका हित साधना और बुनकी सेवा करना है। यहां जिनके द्वारा संपत्ति पैदा करनी है, वे बड़ी बुझके स्त्री-पुरुष नहीं हैं; परन्तु छह-सातसे चौदह-पंद्रह वर्षके लड़के-लड़कियां हैं। इनके लिये शिक्षाकी दृष्टिसे, गांवोंकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे अनुकूल कुछ धंधे ढूंढ़े गये हैं या ढूंढ़े जायेंगे। इन कार्यकर्ताओं या शिक्षकोंसे यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे ये धंधे उत्तम ढंगसे सिखायें, करावें और जिस निमित्तसे बालकोंके जीवनमें प्रवेश करके उन्हें जीवनोपयोगी शिक्षा दें तथा दूसरे प्रकारसे बुनका जीवन सुधारें। जहां खादीको ऐसे धंधेके रूपमें चुना गया होगा, वहां ऐसा मानिये कि वह चरखा-संघकी एक स्वतंत्र और विशिष्ट शाखा है। एक एक शाला एक एक उत्पत्ति-केन्द्र है। उसमें सात-आठ संस्कारी, सुशिक्षित और खास तालीम पाये हुये कार्यकर्ता — खादीसेवक — रखे गये हैं। चरखा-संघकी तरह ही इनके वेतन निश्चित हैं और उन्हें स्वतंत्र रूपमें मिलते हैं। फिर भी, जैसे चरखा-संघ अपने कार्यकर्ताओंसे यह अपेक्षा रखता है कि वे कर्त्तिनोंके हितोंकी रक्षा करें और बुनके हितार्थ ही जिस ढंगसे काम करें कि कर्त्तिनोंकी कुशलता बढ़े, मालका बिगाड़ न हो और कम-से-कम उस केन्द्रका खर्च वहांसे निकल आये, उसी तरह शिक्षा-विभाग भी अपने कार्यकर्ताओंसे ऐसी ही अपेक्षा रखेगा। जिसमें कुशलता, बिगाड़ वगैराके मामलेमें यह बात अवश्य ध्यानमें रखी जाय कि उन्हें बालकोंके द्वारा काम लेना है।

तब ऐसा समझिये कि एक शालाका अर्थ सात-आठ बड़े कार्यकर्ताओं और कोयी दो सौ बालकोंका एक बड़ा कुटुम्ब है। उन्हें पूंजीके सिवा दूसरा खर्च खादी पैदा करके निकालना है। और पासमें जो दो-चार बीघा जमीन है, उसमें थोड़े-बहुत फलफूल, शाकभाजी भी पैदा करना है;

जिसकी कीमत शिक्षा और मनोरंजनकी दृष्टिसे तो बड़ी होगी, परन्तु आदमी खयालसे तुच्छ मानी जायगी। कपास ओटनेसे लगाकर एक खास प्रकारकी बुनायी तकका धंवा करनेकी जिसमें छूट है। बालक अलग-अलग बुझके होंगे। बुनकी बुझका खयाल रखकर ही बुनसे काम लिया जा सकता है। जो काम कराया जाय उसमें बिन बालकोंके हित और शिक्षाकी ज़ान करनेकी जिम्मेदारी भी है। बिन मर्यादाओंके बीच काम करना है।

जिसमें बुझके कुछ स्वाभाविक विभाग जरूर होंगे। प्रत्येक कार्यकर्ता अकेले-अकेले समूहको संभालेगा। जिस समूहने जो काम कराना हो बुन कामकी वह देखरेख रखे और बालकोंके साथ बुन काममें शरीक हो। बुदाहरणार्थ, कभी कभी वह छोटे बालकोंके साथ कपास साफ करने देंगे। उस समय वह उन्हें कपास साफ करनेका तरीका बताये; नाप नाप बिना कचरेकी कपास बिकट्टी करनेकी बात कहे। कपासमें आनेवाले कचरेके प्रकार समझाये। अपने पास जो कपास हो उसकी बिरत बर्तानों वारेमें बालकोंसे कहे। शालामें और किसी बिस्मकी कपास हो तो उससे साथ अपनी कपासकी तुलना कराये। किसी तरह अलग-अलग समूहमें खादी-सम्बन्धी अलग-अलग क्रियाएँ होती रहें; और बुनके सम्बन्धमें विविध जानकारी बालकोंके शिक्षक उन्हें दें। बुनमें काम आनेवाले औजारों, साधनों और यंत्रों आदिका ज्ञान, गणित और जितियाँ भी बताया जाय। जिस प्रकार खादीको केन्द्रमें रखकर बालकोंके विविध प्रकारसे पढ़ा-गुना और विविध जानकारीसे पूर्ण बनाया जाय। जिसने से खादीकी और गांवोंकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धों भी बुझा होंगी। जिसलिजे जिसमें देशकी वर्तमान राजनीति, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओंके प्रश्नोंकी चर्चा करनी पड़ेगी। जिसमें काम आनेवाले प्रत्यक्ष सम्बन्ध होनेसे वह केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं रखनेवाला या 'नागरिक-धर्म' की पुस्तक पढ़ा हुआ नागरिक नहीं बनेगा, परन्तु व्यवहारमें पढ़ा हुआ नागरिक बनेगा।

यह तो केवल बुझकेका विचार करते बिना गीना गया है। जिसके बिना जिस बुद्धि और समझके बीच बालक रहता है, उसका विचार करते भी उसे विविध प्रकारसे पुस्तक बनाया गेगा।

ऐसा भी एक वर्ग है जो बुद्धिग द्वारा शिक्षाकी हिमायत करता है, परन्तु अुसमें बुद्धिगसे बननेवाली वस्तुको महत्त्व नहीं देता। वह विलकुल निरुपयोगी और बनाकर फेंक देने जैसी भी हो सकती है; शायद थोड़े समय शोभा बढ़ानेके लिये या कुतूहलसे आलमारीमें दिखानेकी भी हो सकती है। वे यह मानते हैं कि जिस शिक्षासे बालकके हाथ-पैरोंको तालीम मिले और उसे मनोरंजनके साथ शिक्षा मिले तो काफी है। जिसलिये वे मानो सिद्धान्तके तौर पर यह मानते हैं कि बुद्धिग द्वारा शिक्षामें विगाड़ तो होता ही है। बर्था-योजना जिस शिक्षाकी हिमायत करती है, अुसमें विगाड़का अनिवार्य स्थान नहीं है। अनिवार्य रूपमें कुछ न कुछ विगाड़ हो और अुसे हिमावमें लेना पड़े, यह अलग बात है; परन्तु विगाड़ ध्येयके रूपमें नहीं होना चाहिये। किसी तरह केवल शोभा या कुतूहलको महत्त्वका स्थान नहीं मिलना चाहिये। आप अपनेको एक अुत्पत्ति-केन्द्रके कार्यकर्ताके रूपमें समझने लगें, तो यह बात तुरंत ध्यानमें आ सकती है। अथवा, यों सोचिये कि कोअी बड़की या दर्जी अपने बालकको अपना बंधा करते-करते सिखाये, तो वह विगाड़के लिये लकड़ी या कपड़ेकी कितनी सुविधा अुसे देगा? जलानेके टुकड़े या कतरनों पर वह थोड़े दिन बालकको खेल करने देगा, परन्तु बादमें वह अुसे छोटे-छोटे किन्तु अैसे काम सीपेगा, जिनके लिये अुसे मजदूरी मिलनेवाली हो। आज बनाया और कल जला दिया, अैसी पद्धतिसे सिखाना अुसे कभी पुसायेगा नहीं। जिस-लिये यह समझकर चलना चाहिये कि सिखानेके लिये कच्चा माल खरीदना और अुसका अधिकतर भाग विगाड़ जाते लिख डालना पुसायेगा नहीं।

शालामें चलाया जानेवाला बंधा भले ही आसान हो, परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि वह बंधा है, मजाक नहीं। एक पद्धतिके रूपमें कुछ बेकार नहीं फेंका जा सकता या नहीं विगाड़ा जा सकता।

यदि आप मेरी बात अच्छी तरह समझ गये हों, तो अब आपको यह सोचने लगना चाहिये कि आप शिक्षक न रहकर बुद्धिगके कार्यकर्ता बन गये हैं। अब आप बुनाअीके बंधेमें लग गये हैं। और फिर आपके स्त्री-बच्चे भी होंगे ही। वे भी जिसमें मदद दें। जिससे शालाके बालक, आप, आपका परिवार सबकी मानो एक बड़ी सहकारी समिति बन जायगी।

परन्तु आप तो बुनाबीका घंघा करनेवालेके उपरान्त शिक्षक — अर्थात् ब्राह्मण — भी हैं। आपको अपना यह धर्म छोड़ थोड़े ही देना है। जिस प्रकार आपकी केवल एक घंघा करनेकी ही जिम्मेदारी नहीं, बल्कि उसे सिखाने और उसका शास्त्र निर्माण करनेकी भी जिम्मेदारी है। ऐसा नहीं लगता कि पहलेके ब्राह्मण केवल साहित्य, व्याकरण, तत्त्वज्ञान या कर्मकाण्डके ही शास्त्र रचते या सिखाते होंगे। द्रोण कौन थे? वे शस्त्रविद्याके शिक्षक थे। यही हाल परशुरामका था। अिती प्रकार अनेक धन्वोंके शास्त्र भी ब्राह्मण ही रचते थे। परन्तु द्रोण स्वयं युत्तन योद्धा न होते तो वे शस्त्रविद्या कैसे सिखा सकते थे? घंघे अंसी चीज नहीं हैं, जिन्हें एक आदमी सिखाये और दूसरा न जाननेवाला आदमी उनका शास्त्र बना सके।

जिसका अर्थ यह है कि नजी तालीममें यह भेद नहीं रखा जा सकेगा कि अद्योगके शिक्षक अलग और पुस्तकके शिक्षक अलग हैं। प्रत्येक शिक्षकको घंघेकी क्रियामें कुशल होना ही चाहिये। आज हमारी स्थिति यह है कि हमारी शालामें अगर कोई घंघा चलता होगा, तो उनमें काम आनेवाले औजारों या यंत्रोंके भागोंके नाम तक पुस्तक-निर्माकको मालूम न होंगे। दूसरी अनेक देश-विदेशकी बातें वह कर सकेगा; कमलके पत्र पर्याय बता सकेगा, विज्ञानके सूक्ष्म पारिभाषिक शब्द दे सकेगा। परन्तु चरखेके अलग-अलग भागोंके नाम उसके विद्यार्थी पूछें तो वह नहीं बता सकेगा। उनमें से प्रत्येकके अलग-अलग नाम खोजने और न हों तो रखनेका भी हम परिश्रम नहीं करते। नजी तालीममें यह स्थिति नहीं रहनी चाहिये। जो शिक्षक जिस प्रकार बारीकीमें जायगा, उसे पता चलेगा कि अद्योग द्वारा कितना भाषाज्ञान, विज्ञान, गणित वगैरा बढ़ सकता है, कितना नया साहित्य निर्माण हो सकता है, कितना बुद्धिके विस्तार और शिक्षार्थी की सूक्ष्मता साबी जा सकती है और किस तरह नमाजती गहराईको बुनियाद डाली जा सकती है। जिसका क्रान्तिकारी अन्तर रहने लगेगा अपने ही जीवनमें मालूम होने लगेगा।

## वर्धा-शिक्षाका अक नमूना

मेरे घरकी खिड़कीके सामने अक सूखे हुअे पेड़का तना खड़ा था। कल सुबह मकान-मालिकके नौकरने अक साथीकी मददसे असे गिरा दिया और दोपहरके बारह बजे तक करवतसे काटकर असके बड़े-बड़े टुकड़े कर दिये। असके साथ असकी पत्नी और पांचक वर्यका अक लड़का भी आया था। पत्नीने लकड़ियां अठा ले जानेमें साथ दिया; बारह बजे काम पूरा हुआ तब लम्बा करवत भी वही अठा कर ले गयी। जो तीन-चार घंटे जिस काममें लगे, अतने समय तक वह लड़का भी साथ रहकर कुछ न कुछ करता रहा। छोटे टुकड़े अड़ते अन्हें अठाकर वह अक जगह रखता; साथ ही करवत चलता असका मजा भी देखता। बारह बजे नौकरने करवत हाथसे छोड़ा कि लड़केने तुरंत असे दोनों हाथोंसे घसीटकर लकड़ीके अक टुकड़े पर चढ़ाकर टिका दिया। करवतके दाँते पहले अपरकी ओर रखे। फिर कुछ विचार आया, जिसलिअे पलट कर नीचेकी ओर कर दिये। फिर कुछ विचार आया, जिसलिअे टुकड़े परसे अतारकर व्यवस्थित रूपमें करवतको जमीन पर लिटा दिया। फिर पासमें पड़ी हुअी रस्ती हाथमें ले ली। यह सब असने खुद ही किया, किसीके कहनेसे नहीं। अलटे, जिस क्रियाके साथ वह कुछ बोलता जा रहा था।

वह अैसा कर रहा था, अितनेमें नौकरने करवत पत्नीके सिर पर रखा और अक बड़ा लकड़ा साथीके सिर पर रखा। और सब अपने घरकी ओर विदा हुअे।

नौकर और असकी पत्नी अपढ़ थे। बालकको अपने कामके साथ कुछ न कुछ शिक्षा देना अुनके लिअे संभव नहीं था। वह कुछ सीखेगा, जिस दृष्टिसे वे असे साथ लाये ही न होंगे। वह तो माँके पीछे-पीछे चला आया होगा। परन्तु असे माता-पिताके काममें रस आया। यह काम अुनके जीवनके साथ संबंध रखता है और किसी न किसी तरह

आवश्यक है, यह भी ब्रुसे जरूर पता चल गया होगा। जिसलिज्जे ब्रुसेने माता-पिताके कामका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, और अपनी बालबुद्धिके अनुसार ब्रुसेमें रसपूर्वक भाग भी लिया। जिस कारणसे वह तीन-चार घंटे माता-पिताको तंग किये बिना वहां मौजूद ही नहीं रहा, बल्कि अपनी छोटी छोटी क्रियाओं और मीठी बोलीसे ब्रुसेने माता-पिताका धन भी मिटाया।

जिसी वस्तुको शास्त्रीय पद्धतिसे व्यवस्थित रूप दे दिया जाय, तो वह विद्या बन जाय और ब्रुसेसे वर्वा-धिशाका शास्त्र निर्माण हो जाय।

‘शिक्षण अने साहित्य’, अप्रैल १९४०

## १०

### कमानेवाली शिक्षा

[सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलनमें पेश किया गया प्रस्ताव और ब्रुसे पर किया गया विवेचन।]

#### प्रस्ताव

“जिस सम्मेलनकी यह राय है कि गांवोंमें शिक्षाकी ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे किसी भी साधारण प्रौढ़ विद्यार्थीको यह शिक्षा पार रहा हो ब्रुसी कालमें शिक्षाका स्वयं निष्कास करने कायक कर्तव्य मिल जाय। यदि गांवोंकी शिक्षा-संस्थाओं ऐसी कीजें बनाने लें जो अल्पमानी भी हों और शिक्षाकी दृष्टिसे कीमती भी हों तो ही यह हो सकता है। यह हो सके जिसके लिज्जे देशकी आर्थिक व्यवस्थामें भी लाभ हो लाभ प्राप्ति करनी पड़ेगी। अर्थ-व्यवस्था और शिक्षाके क्षेत्रमें ऐसी ऐसी प्रगति के फलस्वरूप साधारण और बुद्धिहीन कही जानेवाली कर्तव्यों और कुशल कारीगरी दोनोंको दरोंमें सब नरकसे और गामी बनने की होनी चाहिये; अन्न-वस्त्र, नकान और जीवनकी दूसरी जरूरतें सबोंकी पैदावारमें भी काफी वृद्धि होनी चाहिये। जिसके लिज्जे ‘सभी प्राणीस’



औद्योगिक संशोधनका बुद्देश्य छोटे पैमानेके और अलग-अलग बिखरे हुए उत्पादक घंघोंको आर्थिक दृष्टिसे सफल बनाना होना चाहिये। 'नयी तालीम' को ग्रामवासियोंके श्रममें वृद्धि किये बिना गांवोंका आर्थिक स्तर अंचा उठाना चाहिये। उत्पादनका मुख्य बुद्देश्य व्यापार और उद्योगसे नफा और ध्याज कमाना नहीं, परन्तु देशकी आंतरिक स्वयंपूर्णता और उसके सबसे ज्यादा पिछड़े हुए वर्गोंके लिये सुखके साधन मुहैया करना होना चाहिये।"

### बोहरी क्रान्तिकी आवश्यकता

सत्याग्रह आश्रम स्थापित हुआ तबसे गांधीजी जिस बातका आग्रह करते आये हैं कि शालामें पढ़नेवाले विद्यार्थी कोभी न कोभी अपयोगी वस्तुओं निर्माण करें। दुनियादी शिक्षाके आरंभमें भी उन्होंने हमसे कहा था कि विद्यार्थियोंके कामसे शिक्षकोंका वेतन निकलना चाहिये। जिस मुद्दे पर उन्होंने 'हरिजन' पत्रोंमें भी कभी बार लिखा है। दुनियादी शिक्षाकी योजना तैयार करनेके लिये जब जाकिरहुसेन कमेटी बैठी थी, उस समय हमने गांधीजीका यह मुद्दा अंशतः स्वीकार किया था।

अब गांधीजी कहते हैं कि सारी शिक्षा पूरी तरह स्वावलंबी होनी चाहिये। गोसेवा-संघमें तालीम पानेके लिये आया हुआ कार्यकर्ता स्वाश्रयी बनकर किस तरह तालीम पा सकता है, यह प्रश्न उठने पर उन्होंने अपना यह स्पष्ट मत दिया कि अनिवार्य रूपमें स्वाश्रयका ही सिद्धान्त स्वीकार किया जाना चाहिये। स्वावलंबनसे कॉलेजका अध्ययन-क्रम पूरा करनेवाले लोग हमारे यहां हैं। ये लोग अधिकतर ट्यूशन आदिकी सहायतासे असा करते हैं। परन्तु ट्यूशन सबको कहांसे मिले? वह तो बम्बई जैसी जगहोंमें ही मिल सकती है। परन्तु अमरीकामें हमारे यहांके विद्यार्थियोंने देशक जिस ढंगसे शिक्षा प्राप्त की है।

रूसमें वहांकी सरकार जिसके लिये जबरदस्त कोशिश करती है कि कोभी भी प्रजाजन अपढ़ न रहे। परन्तु वहांका तरीका दूसरा ही है। हमारे यहां मजदूरी करनेवालेके लिये प्रगतिकी कोभी दिशा ही नहीं होती। एक बार मनुष्य रसोबिया बना कि सदाके लिये रसोबिया ही

रहता है। उसके जीवनमें प्रगतिके लिये स्थान ही नहीं होता। मनुष्य जो काम करता हो वह भी प्रगतिशील होना चाहिये। अमरीकामें ऐसा नहीं है। कार्नेगी, फोर्ड और मेडिसन जैसेके बुदाहरण जानने लायक हैं। वे मेहनत-मजदूरी करके आगे बढ़े और समाजमें प्रमुख स्थान पर पहुँचे।

यह मार्ग हमारे यहां खुला नहीं है, जिसके लिये हम ब्रिटिश सरकार-को दोष नहीं दे सकते। यदि हम चाहते हैं कि हमारे यहां भी ऐसा हो, तो जिसके लिये अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहिये। अमरीकामें यह कैसे संभव हुआ है? जिसलिये कि वहां मजदूरीका स्तर अंचा है। मजदूरीका स्तर अंचा हो जिसके लिये आर्थिक स्थितिमें प्रगति करनेकी जरूरत है। मजदूरीका स्तर अंचा भुगवेंगे तो ही मजदूरी करनेवालेके जीवनमें उत्साह आ सकता है। दस-ग्यारह घंटे कड़ी मेहनत करनेके बाद वह रात्रिशालामें कैसे आ सकता है? जिसलिये मजदूरी देकर पढ़ाया जा सके, ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिये। यह हाथके बुधोगकी विद्या द्वारा ही संभव हो सकता है। अन्न-वस्त्र आदिकी कमी नहीं होनी चाहिये। हवा और पानीकी तरह ये चीजें पूरी मात्रामें मिल सकनी चाहिये। अन्न और वस्त्र पूरी मात्रामें मिलनेके लिये कोसी हमें अमरीका और रूसकी उत्पादन-पद्धति बताये तो वह हमारे कानकी नहीं। क्योंकि देवार अल्मी भुसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? जिसलिये छोटे पैमाने पर और अलग-अलग बिखरे हुए केन्द्रोंमें उत्पादन करनेकी पद्धति हमें स्वीकार करनी चाहिये। जिस काममें हमें विज्ञानका उपयोग करना पड़ेगा। यह देखना होगा कि ये धंधे आर्थिक दृष्टिसे कैसे सफल बनाये जा सकेंगे। यह मैं कोसी अर्द्धशतक वात आपसे नहीं कह रहा हूं। यह सब है कि जिस प्रचारके संशोधन 'टेकनिकल' संशोधनकी जिम्मेदारी तालीमी संघके गिर पर जाती है। संभव है कि यह सब करनेके बाद भी हमारी स्थितिमें सुधार न मिले। जिसलिये अन्न और वस्तुका विचार करना होगा। यह सब करनेका प्रयोजन क्या है? नफा, व्याज आदि कमाना? नहीं। जिम्मानमें लाने के लिये हरान है। यही बात हमें करनी होगी। सोनेवाले तिल्लेदार, अमरीकामें जमींदार अथवा साहूकार जैसी कमाली करने हैं, ऐसी नहीं हो मजदूरी चाहिये। रुपया लेनेवाला बादमी यह कह सकता है कि भाई, मैं

तुम्हारा मुद्दलका मुद्दल चुकाऊंगा ; वल्कि पांच सौके चार सौ निन्यानवे दूंगा, क्योंकि मैं तुम्हारी पूंजीकी रखा करूंगा !

ये सब धंधे नफेके लिये नहीं चलने चाहिये । हमें देशके चालीस करोड़ लोगोंकी आवश्यकतायें पूरी करनी हैं । देशको स्वयंपूर्ण बनानेका प्रयत्न करना है । जीवनके साधनोंका अभाव किसीको कहीं भी बाधक नहीं होना चाहिये । आज तो किसानोंमें जीनेका भी अत्साह नहीं रहा । मोक्षका हमारा तत्त्वज्ञान थोड़ेसे लोगोंके लिये भले ही बना हो, परन्तु वह करोड़ोंका व्यय नहीं हो सकता । किसलिये जियें, यही प्रश्न है । विनमांगा जन्म मिलनेके बाद मृत्यु भी वैसी ही मिलती है । जीवनके हेतुका सर्वथा अभाव दिखायी देता है । लोगोंका किसी काममें अत्साह नहीं रहा । अतः यह डर रहता है कि यदि ज्यादा मेहनत करेंगे तो सेठ, साहूकार या सरकार छीन लेगी । अंग्रेजी प्रजाको जीवनका व्यय मिलना चाहिये — उसे उसका भान कराना चाहिये । उसे यह भी सिखाना होगा कि पराधीनताका नाश करना है । अज्ञानकी दशामें से ज्ञान, दरिद्रतामें से समृद्धि, रोगमें से आरोग्य और विषमतामें से समानता — अकेताकी तरफ उसे प्रगति करनी है । नौकर मालिकका काम भले ही करे, परन्तु जिस कारणसे उसका स्थान मालिककी बराबरीमें क्यों न हो ? वह भी मालिकका एक प्रकारका मंत्री या सेक्रेटरी ही तो है ? मालिकके लिये पत्रादि लिखनेवाला उसका सेक्रेटरी कहलाता है, तो मालिकके लिये रसोयी बनानेवाला भी सेक्रेटरी क्यों नहीं माना जाना चाहिये ? यह सच है कि मैंने यह वस्तु सिद्ध नहीं की है, परन्तु मुझे जिसका भान हुआ है कि यह दोष है । हममें यह भावना जाग्रत होनी चाहिये कि मैंले कपड़ेवाला प्रतिष्ठाका पात्र है ।

कामके कारण मनुष्यको प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये, न कि स्वच्छ अजुले कपड़ोंके कारण या आरामसे बैठे रहनेके कारण ।

‘शिक्षण अने साहित्य’, फरवरी १९४५

## ‘नयी तालीम’ का संदेश

पिछले कुछ वर्षोंसे गांधीजी अपने पहलेके प्रिय विषय चरखेके वनिस्वत ‘नयी तालीम’ के बारेमें अधिक बोलते थे। जिसका कारण यह नहीं था कि युनकी दृष्टिमें चरखा पहलेसे कम महत्त्वका हो गया था। बुलटे, हाथ-कताबी और हाथ-बुनाबीके बिना युनकी कल्पनाओं ‘नयी तालीम’ का अमल करना ही अनभव है।

नयी तालीम और चरखेके बीचके संबंधकी गांधीजीकी कल्पना सत्य और अहिंसाके बीचके संबंधसे लगभग मिलती-जुलती है। गांधीजीकी रायमें सत्य ही अश्वर और ध्येय है; और अहिंसा उसे प्राप्त करनेका साधन — अकेला सच्चा और सबल साधन है। किसी प्रकार नयी तालीम ध्येय है और चरखा उसे प्राप्त करनेका साधन है। और जिस प्रकार अहिंसा शब्दसे केवल अहिंसा ही न समझकर अंतमें सत्य, अहिंसा आदि दूसरे यमोंका समावेश करना होता है, वुनी प्रकार चरखेमें भी विश्वशांतिकी पक्की बुनियाद डालनेके लिये आवश्यक बौद्धिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सभी मानव-प्रवृत्तियोंका समावेश कर लेना है।

नयी तालीमको जिस तरह मैं समझता हूँ, उसके अनुसार यह शब्द किसी बुनियादी बुद्योग अथवा जिसे ‘अनुपादक प्रवृत्ति’ कहा जाता है उसके द्वारा दी जानेवाली शिक्षाका पर्यायरूप ही नहीं है। इसी कारण जैसा कभी बार कहा जाता है, जिसका अतिना ही भाषार्थ नहीं है कि बुनियादी बुद्योगके साथ पाठ्यक्रमके सब विषयोंका संबंध जोड़ दिया जाए अथवा आयोजन कर दिया जाए। शिक्षाकी ओर नहीं गया सत्य पद्धति कहने मात्रसे जो कुछ सूचित होता है, उसमें नहीं गया सत्य जिसमें छिपा हुआ है।

विचार करने लायक प्रश्न तो यह है कि हमें आवश्यक सीखने ध्येय निश्च करनेके लिये तालीम दी जाती है? एव अन्तर्गत शिक्षा-

संबंधी सारी प्रवृत्तियोंसे — फिर भले ही वे प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च अथवा निष्णातोंकी शिक्षाकी हों — किस प्रकारका समाज पैदा कर रहे हैं या करना चाहते हैं? आधुनिक शिक्षाकी सारी सीढ़ियां पार कराकर अेक महत्वाकांक्षी, बुद्धिशाली युवक (अथवा युवती) को हम किस प्रकारके जीवनके लिये तैयार करना चाहते हैं? विद्यार्थीको बुद्धकी तत्परताके साथ मेल खानेवाले जीवनके लिये तैयार करना चाहते हैं या शांति-स्थापनके साथ मेल खानेवाले जीवनके लिये? आज उसे अनिवार्य फौजी शिक्षा पानेके लिये और फौजी नौकरी, मुल्की नौकरी, बड़ी मात्रामें उत्पादन, विराट् अुद्योग, पूर्ण शस्त्र-सज्जता, राजनीतिक दलोंका संगठन आदि 'केरियरों' के लिये तैयार किया जाता है। वह अेक समर्थ राजनीतिज्ञ, अेक सफल पत्रकार, अेक प्रभावकारी प्रचारक अित्यादि बनना चाहता है। उसे अैसा जीवन जीनेकी तालीम दी जाती है, जिसमें उसे सतत विमानोंमें घूमनेको मिले तथा जो अद्यतन विपुल साधन-सम्पत्तिवाला हो। उसका बस चले तो वह देहातमें व्यतीत करनेका, जन्मसे लेकर मृत्यु तक खेतोंमें पशुओंके साथ रहनेका अथवा हाथ-करघे पर बुनाईके काममें लगे रहनेका तथा गांवोंके प्रश्नों पर ध्यान देकर गांवोंका जीवन-स्तर अूंचा अुठानेके काममें व्यतीत करनेका जीवन पसंद नहीं करेगा। आज हम अपनी प्रजाको जिस प्रकारकी शिक्षा देते हैं, वह अेक बुद्धिशाली और महत्वाकांक्षी युवक अथवा युवतीको अिस प्रकारके जीवनसे संतुष्ट रहनेवाला हरगिज नहीं बनाती। फिर भले ही अिस जीवनके साथ यह आश्वासन दिया जाय कि वह काम करेगा तो उसे अेक अच्छा-सा घर, पेटभर पौष्टिक भोजन, पर्याप्त वस्त्र, अच्छी संगति और निर्दोष आनन्द लेने लायक संस्कारी प्रवृत्तियां मिल जायंगी। अिससे उसे सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि उसे वचपनसे अेक और चीजको अिससे अधिक चाहनेकी तालीम मिली है; अर्थात् हमेशा आगे आनेकी और चकाचौंध पैदा करनेवाली परिस्थितिमें रहनेकी। उसे बांघली चाहिये, शांति नहीं, फिर भले वह बांघली आग बरसानेवाले बॉम्बर हवाई जहाजकी और मानव-जातिके सर्वनाशकी ही क्यों न हो। किसी प्राणीके जीवनके लिये, सादगीके लिये और सदाचरणके लिये उसके मनमें आदर नहीं रहा। स्वतंत्रताका भी बलिदान कर दिया

जाता है। मौजूदा शिक्षा-प्रणालीका — पुरानी तालीमका — केन्द्रबिन्दु भौतिक शास्त्रों द्वारा सामर्थ्य बढ़ाते जाना है।

नवी तालीमका संदेश अिससे बुलटा है। वह भलाजीका विकास करना चाहती है, सामर्थ्यका नहीं; अपने विद्यार्थियोंमें — फिर ये बालक हों या बड़े — वह लड़ाजी और झगड़ेके बजाय शांति और मुमेलता, नादे आनंदोंका, सादी सुख-सुविधाओंका, सचाजीका तथा नीतिनानाका प्रेम, काम करनेका आनंदऔर स्वतंत्रताका जोश पैदा करना चाहती है। वह जीवित प्राणियोंको अेक बड़े यंत्रके पुर्जोंकी तरह नहीं मानना चाहती, ताकि वे अुसके साथ मेल खायें तो ही किसी महत्त्वके रहें, अन्यथा जसानी भी आनाकानीके बिना ‘खतम’ कर देने योग्य माने जायें।

चरखा अिस प्रकारकी संस्कृतिके विकासके लिये नवमे अथिा महत्त्वके स्थूल साधनोंमें से अेक है। वह केवल पुराने जमानेका गुन पैदा करनेवाला यंत्र नहीं है। वह तो अेक अँना केन्द्र है, जिनके चारों ओर शांतिकी संस्कृति खड़ी की जा सकती है। अिमलिजे अुगे शिक्षाकी सारी मंजिलोंमें केन्द्रीय स्थान दिया जाना चाहिये। बचपनमें ही बच्चा बालकके जीवनका अेक अंग न बने और अुसके जीवनके अन्त तक पैदा न रहे, तो खादी स्वयं ही जड़ नहीं जमा सकती। चरखा गांधीजीके नादे रचनात्मक कार्यक्रमका प्रतीक है। अिसका जय हम बिनार करने हैं, तो अुन्होंने ‘लोकसेवक-संघ’ नामक अपनी अन्तिम टिप्पणीमें (देमिये हरिजन, १५-२-’४८) जो यह जोर दिया है कि संस्कृतिके “ग्रामीण लोगोंकी जन्मसे लगाकर मृत्यु तककी शिक्षाकी व्यवस्था ‘नवी तालीम’ के मार्ग पर, हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी निम्नित की हुयी नीतिके अनुसार करनी चाहिये”, अुससे कोजी आश्चर्य नहीं होगा।

‘शिक्षण अने ग्राहित्य’, मार्च १९४८

## इतिहासका ज्ञान

पिछले पचास वर्षोंसे विद्वानोंने इतिहासके ज्ञानकी बड़ी महिमा गाथी है, और अनेक दिशाओंमें ऐतिहासिक शोध करने तथा अनेक विषयोंका इतिहास लिखनेकी काफी कोशिश हुई है। अपने देश, जंगत तथा जीवनकी अनेक बातोंका पिछला इतिहास जानना मनुष्यकी सर्वांगीण और सामान्य तालीमका आवश्यक अंग माना गया है। अर्थशास्त्रियोंमें इतिहासवादियोंका एक सम्प्रदाय ही है। कम्युनिस्ट अपनी विचारसरणीको ऐतिहासिक सत्तों पर ही आधारित मानते हैं और बस परसे मानव-जीवनके भविष्यके सम्बन्धमें निश्चित मत प्रतिपादित करते हैं। ऐतिहासिक ज्ञानकी महिमामें से इतिहासको 'सुरक्षित रखनेका' भी एक आग्रह पैदा हुआ है और वह जिस हद तक बढ़ा है कि मानवके आदि-युगके नमूने लुप्त न हो जायें, जिसलिसे कुछ पुरातत्त्ववादियोंका विचार है कि जंगली व पिछड़ी हुई जातियोंको अनुकी आदि-दशामें ही रहने दिया जाय। जैसे लोग भी हैं, जो अनेक हड़ियों तथा संस्थाओंको आजके जीवनमें अर्थहीन और असुविधाजनक होते हुए भी इतिहासको सुरक्षित रखनेके लिसे बनाये रखना चाहते हैं।

जब इतिहासका अितना ज्यादा महत्त्व माना जाता हो, तब मेरे यह कहनेमें घृष्टता मालूम होगी कि यह मान्यता लगभग वहमकी कोटिकी है। मगर बड़ी नम्रतासे मैं कहना चाहता हूँ कि इतिहासके ज्ञानका जितना महत्त्व माना जाता है, उतने महत्त्वका पात्र वह नहीं है। जिसमें पीतलके गहनेको सोनेका गहना मान लेने जैसी ही भूल की जाती है।

सच बात तो यह है कि किसी भी घटनाका सोलह आने सच्चा इतिहास हमें भाग्यसे ही मिलता है। खुद ही की हुई और कही हुई बातोंकी भी याददाश्त अितनी तेजीसे धुंधली पड़ जाती है कि थोड़े समय बाद उसमें सत्य और कल्पनाका मिश्रण हो जाता है। किसी मानस-

शास्त्रीने अेक प्रयोगका वर्णन किया है। विद्वानोंकी सन्तानें अेक नाट्य-प्रयोग किया गया। अुसमें अेक दुर्घटनाका प्रदर्शन किया गया। प्रयोगके साथ ही अुसकी फिल्म भी अुतार ली गयी। प्रयोग कुछ मिनटोंका ही था। प्रयोग होनेके आध घण्टेके बाद श्रोताओंसे कहा गया कि अुन्होंने जो देखा अुसका ठीक ठीक वर्णन लिखें। नतीजा यह आया कि तीस साक्षियोंमें से अेक दोके वर्णन तो फिल्मके साथ ८० फीसदी मिलते थे, दोप सबके वर्णनोंमें ४० फीसदीसे ६० फीसदी तककी भूलें निकलीं।

अिसमें आश्चर्य करने जैसी कोअी बात नहीं है। जब तटस्थ और सावधान सादी भी घटनाओंको यों तेजीसे भूल जाते हैं, तब फिर अिनमें घटनाओंको जन्म देनेवाले तथा अुन्हें लिख रखनेवाले लोगोंका कोअी रागद्वेष — पक्षपात वगैरा हो, अुनके वर्णनोंमें अगर नञाअीका हिस्सा कम हो और जैसे जैसे समय बीतता जाय, वैसे वैसे ज्यादा कम होता जाय, तो अिसमें आश्चर्यको क्या बात है? वर्तमान घटनाओं भी अेक ही दिनमें अैसी संशयास्पद बन सकती हैं कि सब सब घटना क्या घटी यह कभी भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कल तक कन्दर्पसेकी 'काल कोठरी' की बातको सभी विद्यार्थी और शिक्षक सच्ची घटना समझते थे। वही अब गप साबित हुयी है। अनी हाल ही में पंडित मुन्दरलालजीने यह बतलाकर हमें आश्चर्यचकित कर दिया है कि सोमनाथको लूटनेकी बात भी सच नहीं है। अगस्त १९४६ के बाद देगभरमें होनेवाले हिन्दू-मुस्लिम अत्याचारों और दंगोंका सोलह जाने सच्चा इतिहास कभी भी नहीं मिल सकेगा। कृष्णका सच्चा जीवन-चरित्र कौन जान गइया है? रामका ही नहीं अीसा मसीहका भी जन्म कभी हुआ था या नहीं, और अुन्हें क्रॉस पर चढ़ाया गया था या नहीं, अिन पर भी संचा की गयी है। शेक्सपीयरके नाटकोंके सन्वन्धमें प्रेमानन्दके नाटकों केसा ही विवाद है। अिधर विद्वानोंमें अिम संबंधमें नञा चली है कि अाजिमान अितने हो गये हैं।

अिस तरह अिस इतिहासके ज्ञानकी हम नहिना पाते हैं, या अैसे ही इतिहासके नामसे और सेप्रेडरियेटके अुत्तरों तथा प्रत्यक्ष ज्ञान केअेसाअे अुहसे अुनकर लिखा गया हो, फिर भी यह अुपजान या अुपमान घटनाओं



ज्यादा कीमती नहीं होता। बुसका वाचन और पिछली कड़ियोंको खोजने और जोड़नेकी बौद्धिक कसरत मनोरंजक अवश्य है, मगर शेक्सपीयर, कालिदास और वर्नाड शंके अुत्तम नाटकों या पौराणिक वार्ताओं तथा परंपरागत दंतकथाओंसे ज्यादा कीमत न तो बिसकी करनी चाहिये, और न अनुसे ज्यादा बिसके ज्ञानका मोह रखना चाहिये।

इतिहास पढ़कर भूतकालके सम्बन्धमें हम जो कल्पनाएँ करते हैं, वे योग्य मात्रासे बहुत ज्यादा व्यापक रूप लिये होती हैं। और अनु परसे हम जो अभिमान या द्वेष अपने दिलोंमें पालते हैं, वे तो बेहद अनुचित होते हैं। प्रजाजीवनके वर्णनोंमें प्रजाके बहुत ही थोड़े भागके जीवनकी जानकारी बुसमें दी हुयी रहती है; मगर हम समझ लेते हैं कि वह पूरी प्रजाकी हालतका वर्णन है। भूतकालमें भी समृद्धि थी। बड़े बड़े नगर थे, नालंदा जैसे विद्यापीठ थे; बिस जमानेमें भी हैं। मगर हमें ऐसा नहीं लगता कि आजकी तरह बुस समय भी थोड़े ही लोग बुस समृद्धिका उपभोग करते होंगे, ज्यादातर लोग गरीब ही होंगे; गुरुकुलोंका लाभ गिनेचुने लोग ही लेते होंगे; गार्गी जैसी विदुषी कोभी हर ब्राह्मणके घरमें नहीं होगी; अनेक ब्राह्मणियां तो आज जैसी ही निरखर होंगी, और दूसरे वर्णोंके स्त्री-पुरुष भी आज जैसे ही होंगे। मगर हम समझते हैं कि बुस समय तो सभीकी हालत अच्छी ही थी; बादमें बदल गयी। लेकिन बहुत बड़े प्रजा-समूहके लिये ऐसा कहा तक कहा जा सकता है, जिसमें शंका ही है।

शिवाजीने बुस जमानेके मुसलमान राज्योंके खिलाफ मोर्चा लिया और स्वतंत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना की, बिस परसे मराठा मात्रको लगता है कि मुसलमानोंसे द्वेष करना अनुका कुलधर्म है; जिसी न्यायसे शिवाजीने सूरतको लूटा था, बिसे पढ़कर मेरे एक वचनके साथीको, जिसके पूर्वज सूरतमें रहते थे, ऐसा लगता था कि शिवाजी और मराठे सब लुटेरे ही थे और महाराष्ट्रीयोंके प्रति घृणा रखनेमें उसे कुलाभिमान मालूम होता था। अगर इतिहास जैसी कोभी चीज न हो, मनुष्यको भूतकालकी कोभी स्मृति ही न रहती हो, तो देश-देश और प्रजा-प्रजाके बीचकी दुश्मनियोंको पोषण न मिले। अभी तक ऐसी कोभी प्रजा या

व्यक्ति नहीं हूँ, जिन्होंने इतिहास पढ़कर कोसी गिला ली हो और समझदार बने हों।

सच पूछा जाय तो इतिहास स्मृति या याददाश्तका ही दूसरा नाम है। क्योंकि ज्यादातर इतिहास लिखनेकी प्रवृत्ति बुद्धिमान समय नहीं होती जब कि स्मृति ताजी होती है, बल्कि बुद्धिमान समय होती है जब वह धुंधली पड़ जाती है और सच्ची घटनाएँ जाननेके साधन भी लुप्त होने लगते हैं। मगर ताजी और सच्ची स्मृति भी मनुष्यको निम्न हुआ बरदान ही नहीं, बल्कि श्राप भी है। दो गायके बीच सहानुभूति — प्रेम सदा रहता है। बुद्धिमान के बीच हुआ झगड़ा क्षणिक होता है, क्योंकि बुद्धिमानकी याददाश्त बहुत कमजोर होती है। और जब झगड़ा न हो, बुद्धिमानकी याद भी न हो, तब बुद्धिमानकी आपसकी सहानुभूति स्वभावसिद्ध होती है। मगर मनुष्य स्मृतिको ताजी रखकर ज्यादातर द्वेषको ही जीवित रखते हैं; यानी सहानुभूतिको — प्रेमको घटाते हैं। स्वभावसिद्ध सहानुभूति — प्रेम अगर किसी खास कर्म द्वारा व्यक्त किया गया हो, तो वह याद रहता और पुष्ट होता है; मगर बुद्धिमानके अनायमें या बुद्धिमान सक्नेवाला झगड़ा कहीं एक बार भी हो जाय, तो वह स्मृति द्वारा लम्बे बरसे तक टिकता है।

यह सब देखते हुये मुझे नहीं लगता कि इतिहासका शिक्षण पाठ्य-नाटक-पुराण-अपुन्यास वगैरा साहित्यके शिक्षणसे ज्यादा महत्त्व रखता है। इतिहासका अज्ञान अकाश प्रसिद्ध नाटक या काव्यके अज्ञानसे ज्यादा बड़ी खामी नहीं है। जिसे मनोरंजक साहित्यका ही एक विभाग समझना चाहिये।

आजका मानव-जीवन इतिहासका ही परिणाम है। हमें वर्तमान मानव-जीवनका अच्छी तरहसे निरीक्षण करना चाहिये और इतिहासकी कदमें पड़े वगैर बुद्धिमानकी समस्याओंका हल खोजना चाहिये। अज्ञान बढ़ खनेका कोसी कारण नहीं है कि इतिहास टूट जायगा या बुद्धिमान परम्परा कायम नहीं रहेगी। क्योंकि बुद्धिमानके संस्कार तो पुराने ही हमारे जीवनमें दृढ़ हो चुके हैं। जिसलिसे चाहे जितना प्रयत्न कीजिये, बुद्धिमान कारण-कार्य-शृंखला टूट ही नहीं सकती। जो अज्ञान हम नालिये, वे हमें

भूतकालके किसी संस्कारमें से ही सूझेंगे, यानी बिना पढ़े हुअे इतिहासमें से ही सूझेंगे। पढ़े हुअे इतिहासका अलुटे जिसमें विघ्नरूप होना ही ज्यादा संभव रहता है।

अगर इतिहास न होता, तो झंडेके चक्रकी अशोकके धर्मचक्रसे या कृष्णके सुदर्शन चक्रसे तुलना करनेकी बिच्छा न होती; और चांद-तारेके झंडेको भी महत्त्व न मिलता। इतिहासका ज्ञान क्षीण होनेके कारण जिस तरह मध्यकालमें हिन्दुस्तानमें आये हुअे शक, हूण, यवन, वर्वर, अमुर वगैरा लोगों तथा अुनके धर्मों और आर्योके बीच आज कोयी स्वदेशी-परदेशीका भेद नहीं करता या हिन्दूकी 'सावरकरी' व्याख्या पढ़ने नहीं बैठता, अुसी तरह आज मुसलमान, अीसाअी, पारसी वगैराके संबंधमें भी हुआ होता। पौराणिक चतुःसीमाके अनुसार अरबस्तान, तुर्कस्तान, मित्र, वरमा वगैरा सब देश भरतखंडके ही देश माने जाते। जिस तरह इतिहासके अज्ञानके कारण कुछ लोग मानते हैं कि सारे पुराण अेक ही कालमें और अेक ही व्यक्ति द्वारा लिखे गये हैं, अुसी तरह सारे धर्म सनातन धर्मके ही भेद समझे जाते। इतिहास पढ़नेके परिणाम-स्वरूप हम दूसरोंसे अलग होना सीखे हैं, मिलना नहीं।

शिक्षणमें इतिहासको गौण स्थान देनेकी जरूरत है। अुसकी कीमत भूतकाल-सम्बन्धी कल्पनाओं अथवा दन्तकथाओंके बराबर ही समझनी चाहिये।

‘जड़मूलसे क्रान्ति’, ३०-१-’४८

## पुस्तकालय

कुमारप्पा ग्राम स्वराज्य संस्थान

बो-190, यूनिवर्सिटी मार्ग

बापू नगर, जयपुर-302015

